ॐ

स्वामी शरण कृत

युगबोध

नूतन युगबोध का प्रबन्ध काव्य

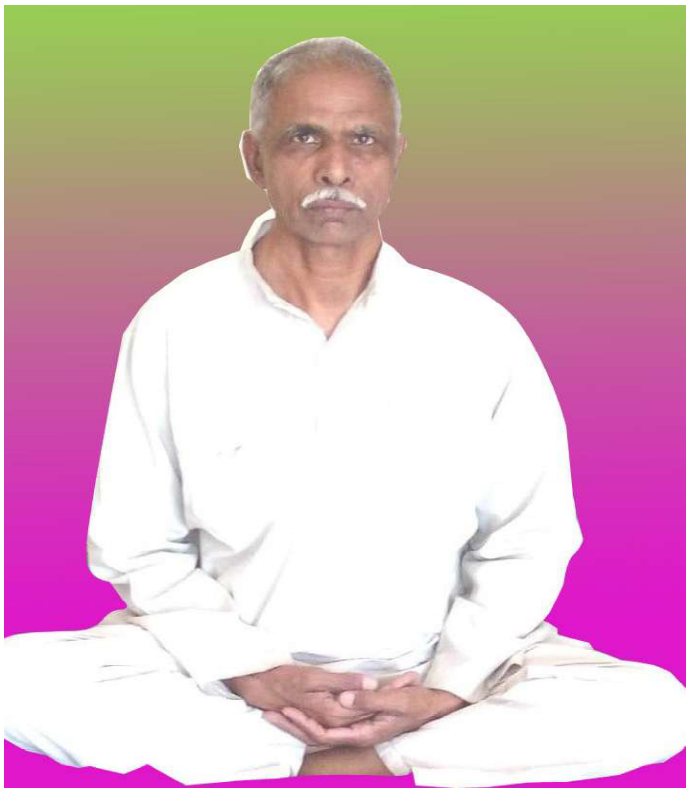

त्र्यम्बक प्रकाशन

109/408 बी.1, नेहरू नगर, कानपुर - 208 012

978-81-934184-5-1

पुस्तक	:	युगबोध
लेखक	:	स्वामी शरण
सर्वाधिकार	:	लेखकाधीन
संस्करण	:	प्रथम 2017
मूल्य	:	` 300
प्रकाशक	:	त्र्यम्बक प्रकाशन
व मुद्रक		109/408 बी, नेहरू नगर, कानपुर - 208012
		मो. 9336832305, 9580175474
		email - triambakprakashan@gmail.com
		triambakgraphics@hotmail.com
		https://www.facebook.com/Triambak-Prakashan-1541164766189212/

YUGBODH
BY SWAMI SHARAN
मूल्य तीन सौ रुपये मात्र

ॐ

युगबोध

अनुक्रम

1. प्रथम सुमन	वन्दन	10
2. द्वितीय सुमन	भारत	22
3. तृतीय सुमन	कृष्ण	29
4. चतुर्थ सुमन	वेदना	39
5. पंचम सुमन	संकल्प	64
6. षष्ठ सुमन	स्मृति	78
7. सप्तम सुमन	दर्शन	83
8. अष्टम सुमन	प्रस्थान	93
9. नवम सुमन	यात्रा	105
10. दशम सुमन	अभ्यागत	122
11. एकादश सुमन	स्नेह	144
12. द्वादश सुमन	साधुता	177
13. त्रयोदश सुमन	कर्तव्य	187
14. चतुर्दश सुमन	तुष्टि	197
15. पञ्चदश सुमन	मुक्ति	213
16. षोडश सुमन	आघात	245
17. सप्तदश सुमन	उदय	251
18. अष्टादश सुमन	विकास	256
19. एकोनविंश सुमन	विचलन	259
20. विंश सुमन	अनुभूति	263
21. एकविंश सुमन	अनुबोध	272
22. श्रद्धा सुमन		298

ॐ

भूमिका

(प्रथम संस्करण)

किशोर वय उदीयमान कवि स्वामीशरण की शीघ्र प्रकाश्य रचना प्रबन्ध काव्य 'युगबोध' का अवलोकन कर प्रसन्नता हुई। अल्पवय में ही प्रबन्धकाव्य का सृजन एवम् काव्यशास्त्र का पग-पग पर निर्वाह इसकी विशेष रूप से उल्लेखनीय विशेषता है।

काव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण पद्धति से किया गया है। तदुपरान्त प्रतिपक्ष, आंग्लशासन का उत्कर्ष एवं वीभत्स निन्दनीय स्वरूप का वर्णन है। ऐसे भयावह वातावरण में नायक मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी, जिसे कवि ने सर्वत्र 'मोहन' नाम से ही सम्बोधित किया है, का प्रादुर्भाव होता है -

उसी सभय सारे जीवों के,
उद्धारक जन जन के त्राता।
आये वापस मानवता के,
मोहन सुन्दर भाग्य विधाता।

एतद् पश्चात अहिंसा दर्शन का बहुत ही मार्मिक चित्रण है। नायक के राष्ट्रहित में बहुत ही सुन्दर चिन्तन के साथ द्वितीय सर्ग का शुभारम्भ होता है। इसी सर्ग में बन्धुप्रेम के भी नवीन वर्णन का आनन्द मिलता है।

तृतीय सर्ग 'यात्रा' तो जीवन यात्रा का जीवन दर्शन ही है। परम्परागत लीक से हट कर उपमाओं की नवीन धारा का प्रवाह प्रारम्भ से ही है। वियोग-वर्णन में नख शिख वर्णन की दोहरी उपमाएं तथा उनका संयोग तथा वियोग की स्थिति में किस प्रकार बदल कर प्रयोग होता है, यह एक अभूतपूर्व मनोवैज्ञानिक प्रयोग है।

परन्तु काव्य का उद्देश्य काव्य चमत्कार नहीं है। गाँधीवाद की मूलभूत नीतियों का स्पष्ट दिग्दर्शन है -

दुष्टता ही यदि दिखाता मैं वहाँ।
भेद रहता दुष्ट में मुझमें कहाँ?

और देखिए कितने स्वाभाविक ढंग से कह दिया है केन्द्रीय दर्शन -

'पाप से हो घृणा पापी से नहीं।
फले फूले भावना यह सब कहीं।।

आवश्यकता है हमको इस दर्शन की -

अधिकार चाहते हो तो उसके योग्य बनो,
दृढ़ निश्चय कर फिर प्राप्ति हेतु संघर्ष करो।
है सकल द्रव्य अधिकार तुम्हारे करतलगत,
जितनी अभिलाषा ही उतना उत्कर्ष करो।।

और भी -

हैं हिन्दू, मुस्लिम, जैन, पारसी, ईसाई -
इस भेद-भाव को छोड़ हमें मिलना होगा।

बंगाली, उर्दू, हिन्दी, तमिल, तेलगू या
कन्नड़ मलयालम को विस्मृत करना होगा।।

इस प्रकार नवीन युगबोध से अनुप्राणित यह 'युगबोध' काव्य सर्वथा ग्राह्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वत्-समाज में काव्य का यथेष्ट सम्मान किया जायेगा। प्रत्येक सर्ग में नया छन्द, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन तथा आगामी सर्ग के कथानक की सूचना जैसे सूक्ष्म विधानों का भी जितना सत्कर्ता के साथ पालन किया गया है, वह सराहनीय है। वैसे काव्य के गुण स्वतः प्रकाश्य होंगे। कवि के इच्छित यज्ञ, जिसका स्वरूप, उसने सप्तम सर्ग में वर्णित किया है, 'ज्ञानयज्ञ' की सफलता की कामना करता हूँ-

हवन कुण्ड तम आवृत मानस,
समय तथा श्रम ही समिधा।
शिक्षण पाठ समोच्चारण ही,
अनुपम स्वाहा और स्वधा।।

दीपावली, 1978 ई. **डॉ, प्रसाद 'निष्काम'**
शास्त्री नगर, कानपुर। एम, ए,, पी-एच डी., साहित्य मार्तण्ड

ॐ

प्रस्तुति

(प्रथम संस्करण)

अधुनातन युग की परम विभूति, युगदृष्टा, विश्ववंद्य, महात्मा मोहन के सार्वजनिक लोक हितकारी जीवन का उषाकाल, सजीव, सचर भास्कर की अरुणिमा, दक्षिण अफ्रीका प्रवासियों का नागरिक अधिकार प्राप्ति एवं प्रथम प्रबोध जो 'युगबोध' बन गया, काव्य का प्रतिपाद्य है।

किसी घटना का यथावत् ज्ञान अथवा कोरे उपदेश काव्य के मूल ध्येय नहीं होते। कदाचित् इसी दृष्टिकोण से सम्प्रति कथानक विहीन प्रबन्ध काव्यों (महाकाव्य तथा खण्काव्य) का प्रादुर्भाव एवम् प्रचलन हुआ। किन्तु, बहुधा कथानक विहीन प्रबन्ध एक लम्बी कविता बनकर रह जाते हैं तथा सर्ग विहीनता इसमें और भी सहायक होती है। अतः कथानक की किञ्चिन्मात्र भी उपेक्षा न करते हुए काव्य को सप्त सर्गों में विभाजित किया है। कथोपकथन तथा उपमादि का अवलम्ब लेते हुए ही अभिलाषित दर्शन का प्रतिपादन किया गया है।

प्रस्तुत काव्य एक खण्ड काव्य होने के कारण चित्रण में संकोच की प्रवृत्ति अनिवार्य ही है। तथापि किसी भी महत्वपूर्ण पक्ष को पूर्णतः अनस्पर्शित ही नहीं रहने दिया गया है। संकोच कारण से किसी भाव या घटना के प्रति अन्याय न होने देने के लिए लेखनी कृत संकल्प रही है। एतदर्थ कवि कल्पना के

उपयोग की लालसा का संवरण नहीं कर सका हूँ, संतृप्ति दी है, हाँ इनके पूर्वोपरि मर्यादा का ध्यान अवश्य रखा है।

कथानक सामग्री एतद् विषयक संभाव्य प्रमाणिकतम ग्रन्थ नायक द्वारा स्वयमेव विरचित 'सत्य के प्रयोग' अथवा आत्मकथा से ही ग्रहण की गयी है। कवि कल्पना द्वारा कथानक को अनुचित रूप से क्षण-विक्षत करके उसके मूल स्वरूप को विनष्ट करने के दुर्विचार का अस्पर्शित त्याग किया गया है। वास्तविक घटनाक्रम का काव्यात्मक आख्यान प्रस्तुतीकरण ही प्रस्तुत काव्य का पुण्योद्देश्य है।

कानपुर **स्वामी शरण**

ॐ

नवीन संस्करण का निवेदन

युगबोध का प्रकाशन लगभग चार दशक पूर्व हुआ था। उस समय यह सात सर्गों का प्रबन्ध काव्य था। उससे पूर्व तथा पश्चात् भी इस सम्बन्ध में रचना होती रही तथा विभिन्न रूपों में उसका प्रकाशन भी हुआ। परन्तु युगबोध का नवीन संस्करण नहीं प्रकाशित किया जा सका, इसे ईश्वर की इच्छा ही मान सकते हैं। युगबोध की रचनाकाल में ही वेदों के स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी होने लगी थी। परमात्मा की प्रेरणा से ओम् साधना तथा वेदोपासना में ध्यान देने से काव्य साधना से दूरी बनती गयी, परन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि कविता से पूरी तरह दूर होना सम्भव हो सकता है। वेदोपासना तथा काव्य-साधना का समन्वय वेदायन में वेद-सूक्तों का काव्यानुवाद प्रस्तुत करने के रूप में प्रतिफलित हुआ है। मेरे लिए वही काव्य-साधना का फल है।

परन्तु युगबोध का अपना महत्व है। बहुत समय से विचार आता रहा कि युगबोध का परिवर्धित संस्करण प्रकाशित किया जाये, परन्तु वेद-कार्य में ध्यान देने से युगबोध के प्रकाशन के प्रति अपेक्षित गम्भीरता नहीं आ सकी। अब ऐसा अनुभव हुआ कि युगबोध का जैसा कुछ स्वरूप इतने दिनों में बन गया है, उसे प्रस्तुत कर दिया जाये। वास्तव में युगबोध अभी भी अपूर्ण है। यह कभी भी पूर्ण कर सकूँगा, यह कहना मेरे लिए कठिन है। मुझे प्रतीत होता है कि युगबोध तो कभी पूर्ण हो ही नहीं सकता है। अतः जो सम्भव हो सका है, वैसा ही स्वीकार किया जाना उचित है।

युगबोध की भाषा-शैली रचनाकाल, कथा-प्रसंग तथा विषय-वस्तु के अनुसार परिवर्तित होती रही है। युगबोध के विमोचन पर कवि-सम्मेलन का आयोजन 19 फरवरी 1979 को किया गया था। उसमें राष्ट्रीय स्तर के अनेक ख्यातिलब्ध कवियों के आशीर्वाद का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। अतः परिवर्ती रचनाओं में कवि-सम्मेलनों की भाषा-शैली का भी प्रभाव पड़ा। वह भाषा प्रथम संस्करण की भाषा की अपेक्षा लोक व्यवहार की भाषा है, तथा उसमें विदेशी शब्दों का भी प्रयोग है। मैं विनम्रता पूर्वक स्वीकार करता हूँ कि विद्यालय में भी मैं कविवर जयशंकर प्रसाद जी से बहुत प्रभावित रहा हूँ तथा उनके जैसी भाषा को रचना का माध्यम बनाने का लोभ भी रहा है। युगबोध के प्राथम संस्करण के प्रकाशन पर वरिष्ठ कविजनों ने उसमें कामायनी की बाल-सुलभ छाया होने का अनुभव व्यक्त किया था, जो मेरे लिए उनका आशीर्वाद तथा पुरस्कार ही है। परन्तु कवि-सम्मेलनों में वह भाषा स्वीकार्य नहीं थी, भाषा-शैली में परिवर्तन हुआ है। वेदोपासना में वही प्रसाद-गुण सम्पन्न साहित्यिक भाषा अपनाने का प्रयास किया गया है। यह युगबोध जैसा कुछ बन पड़ा है, सेवा में समर्पित है।

स्वामी शरण

ॐ

युगबोध

प्रथम सुमन

वन्दन

प्रभु परमव्यापक विभुस्वरूपम् शिवम् सत्यम् सुन्दरम्।
सर्वेश्वरम् सुखकरम् स्वामी सर्वदुःख-संकटहरम्।।
विद्या-बलम् चातुर्य-ज्ञान-विधान-दानम् शुभ-करम्।
परमात्म-सूक्ष्म-विराट-नाथम् देव-देव, पिता वरम्।।

कृत्वा नमः दिव्य-परमेश्वरं तम्
भर्गः च सवितुः सुचेता वरेण्यम्।
स्वामीं सकरणम् सृजन-मूल-मूलम्
व्याधिम् हि हरणाय तम् वैद्यवैद्यम्।।

सकल दुःखहारी सदानन्दकारी।
सचेतन सदात्मा ऋतात्मा विचारी।।
त्वमेव हि वन्धुः पिता मित्र भ्राता।
सनातन दयालुः सदा सर्व माता।।

नमस्ते नमस्ते सदा विघ्न हारी।
नमस्ते हि तुभ्यं सुखानन्द कारी।
नमस्ते सदा दिव्य जीवन प्रसारक,
नमस्ते सखे विश्व - निर्व्याधिकारक।।

त्वमसि चेतना चेतनां देहि सर्वम्।
त्वमसि दिव्यता दिव्यताम् देहि सर्वम्।।
त्वमसि दिव्य प्रज्ञा, सुप्रज्ञाम् प्रयच्छहि।
ऋतम् सत्य-सुन्दर-शिवम् त्वम् प्रयच्छहि प्रयच्छहि।।

अहम् कामये दिव्य-चेतन-विलासम्।
अहम् याचये दिव्य-प्रासाद-वासम्।
सदा कामना आमरण - कर्म - शक्तिम्।
सदा याचना दिव्य-परमात्म-भक्तिम्।।

ओम् वेदो धर्म मूलम् च, भाषा वैदिक-संस्कृतम्।।
वैदिकम् इतिहासम् च, एषः धर्मः सनातनः।।

कृष्णे घने तेज-प्रकाश-युक्तः,
चन्द्रेव यः पूर्णतिथे प्रभूतः।
संघर्षमध्ये जननायकः यः,
वन्दामि तम् मोहनविश्वरूपम्।।

यः विश्वनेता सुख-शान्ति-दाता,
स्नेहामृतं यो मनुजान् प्रदाता।
पीत्वा वयं तत् च विनाश-मुक्त्वा
वन्दामि तम् मोहनविश्वरूपम्।।

शक्तिः शरीरस्य न क्षेष्ठशक्तिः,
उच्चौ दया-स्नेह-बलौ शिवौ स्तः।
सन्देश-दाता जयताम् विधाता,
वन्दामि तम् मोहनविश्वरूपम्।।

संसार-पङ्के जलजेव जन्मा,
यन्त्रेव यम् पश्यति गन्धकांक्षी।
भृङ्गेव स्वामीशरणः विनीतः,
वन्दामि तम् मोहनविश्वरूपम्।।

हे परम प्रभु कर दो कृपा, आनन्दघन अनुदान दो।
सब मिट सके सन्ताप जग का, नाथ ऐसा ज्ञान दो।
हम कर सकें सत्कर्म कुछ, वह शक्ति हे भगवान दो।
शुभ धर्म वैदिक आचरण हो विश्व में, वरदान दो।।

अविचार और अधर्म अत्याचार स्वामी नष्ट हो।
जग धर्म का आलोक फैले, मत किसी को कष्ट हो।
जग शान्ति सुख सम्पति से हो पूर्ण वह प्रभु ज्ञान दो।
शुभ धर्म वैदिक आचरण हो विश्व में, वरदान दो।।

हो विश्व में सर्वत्र प्रभु, आनन्द सुख श्री सम्पदा।
परिपूर्ण वैभव धर्म के आलोक से हो सर्वदा।
पावन प्रभो विज्ञान सागर, सब हमें विज्ञान दो।
शुभ धर्म वैदिक आचरण हो विश्व में, वरदान दो।।

शुभ वेद के आलोक से प्रभु उठे अवनी जगमगा।
जन-जन करें उन्नति सदा, निज कर्म तन मन धन लगा।
स्वामी शरण को वेद-विद्या भक्ति का प्रभु दान दो।
शुभ धर्म वैदिक आचरण हो विश्व में, वरदान दो।।

शिव सत्यानन्द सत्य स्वामी,
तुम दुःखहारी सुखकार महा।
तुम सर्वेश्वर परमेश्वर हो,
हैं दीन दुःखी बहु जीव यहाँ।।

तुम दुख भंजन सुख रंजन हो,
रहिये प्रभु सहचर सदा यहाँ।
हे सर्वेश्वर, सुख मूल धरा पर,
है जीवन निर्शूल कहाँ।।

भारत भू यह आदि काल से,
निर्मल सत्यावर्त रहा।
पर सत्य रहित है राष्ट्र बना,
अब तो यह मिथ्यावर्त महा।।

विचरेगा विश्व विमल पथ पर,
आशा है केवल शेष यहाँ।
सर्वेश आपकी करुणा से,
खिल सकता पावन पुष्प यहाँ।।

यह विनय हमारी पूर्ण करो,
हो कृपा आपकी नाथ महा।
यह सेवक स्वामी शरण सदा,
अभिलाषा उर में रखे रहा।।

दे दो प्रभो वह शक्ति जिससे, कर्म ऐसा कर सकें।
प्रभु, भार जो भी आ पड़े, हम वहन उसको कर सकें।।

हम हों नहीं भयभीत, आये आपदा कितनी कभी।
शुभ कार्य हमको जो मिले, हम पूर्ण उसको कर सकें।

करते रहे सेवा सदा हम, पुण्य भारत देश की।
अवसर कहीं यदि आ पडे तो देश हित हम कर सके।।

संस्कृति हमारी खो गयी है जो हमारी भूल से।
स्वामी शरण जग में उसे फिर से प्रतिष्ठित कर सकें।

मां न पिता न कुटुम्ब न बन्धु,
न साथ कहीं अपना हितकामी।
चाहत पूर्ण हुई कब मित्र,
रहे हम नाथ! निराश अकामी।।

व्यापक है सब में सब ओर
बही जग कारण अन्तर्यामी।
पालक भी न करें जो सनाथ
अनाथ अकाम अकारण स्वामी।

विमल मनोहर धरणी तल पर,
झरे ज्ञान निर्झरणी भर- झर,
सरिता बहे विमल मत रूपी,
इस सुरम्य सुन्दर धरणी पर।।
हे स्वामी स्वज सुखकर।।

सत्याचार प्रबल हो ऐसा,
कांपे कायर तरु मिथ्याचर,
सद् विवेक से भरे रहें सब,
बहे ज्ञान नद उमड - उमड कर।
हे स्वामी स्वज सुखकर।।

लघु नद, नद महान, रत्नाकर,
झरते झरने निशि दिन झर - झर,
हे तारापथ पर प्रकाशकर,
सर्व लोक सुखदाता शिवकर।
हे स्वामी स्वज सुखकर।।

गाये विमल विश्व यह महिमा
नाथ आपकी हर्षित होकर,
स्वामी शरण दिव्य महिमा को
लिखता रहे लेखनी लेकर।।
हे स्वामी स्वज सुखकर।।

हे सुखदाता, भू कष्ट विकल,
जीवार्थ यहाँ निर्मित जल थल,
निर्माता यह शरीर शीतल,
सब जीवों के उत्तापहार।
हे दीन बन्धु, हे सुधाधार।।

अवरोधक सत्यात्मा की क्षति,
कर दो प्रदान तुम निर्मल मति,
सत्याचर दाता उत्तम गति,
बल दाता सुखदाता अपार।
हे दीन बन्धु, हे सुधाधार।।

मानव को देते बुद्धि विमल,
सबकी उन्नति हो सदा प्रबल,
करते मानव का मन निर्मल,
हे परम देव हे महापार।
हे दीन बन्धु, हे सुधाधार।।

तुम करते हो उत्ताप हरण,
सबके कष्टों का सदा क्षरण,
स्वामी अवर्ण्य महिमा प्रकरण,
हे प्रभु कैसे पा सकें पार।
हे दीन बन्धु हे सुधाधार।।

नभ में निर्भय द्यौयान चलें,
हम कभी नहीं जा सकें छलें,
हो उन्नत अपना दिव्य ज्ञान।
हे परमेश्वर करुणा-निधान।।

जल थल अम्बर निर्भय विचरें,
हम अविष्कार शिव सदा करें।
हो सृजनमयी विज्ञान-ज्ञान।
हे परमेश्वर करुणा-निधान।।

हो राजनीति भी धर्ममयी,
हो सदा सत्य शिव कर्ममयी।
यह स्वामी का सुन्दर विधान।।
हे परमेश्वर करुणा-निधान।।

धरा भार भगवान्, कितना भयावह,
वहन हेतु उनको सबल प्रभु बना दो।
दिखा दो दया दिव्य करुणा महाप्रभु,
कृपा की नयी एक सरिता बहा दो।।

सदा कष्ट संकट हरा आपने है,
बने आज निष्ठुर न विश्वास होता।
प्रभो व्याधिहारी हरण व्याधियां हों,
सुखद रूप करुणेश हमको दिखा दो।।

हमें चाहिये नाथ बल-पुञ्ज ऐसा,
धरा धर्म धारी विधाता बना दो।
मिटे पाप पाखण्ड, भूतल विमल हो,
उसे योग्य स्वामी शरण अब बना दो।।

कवि, तेरी अमर लेखनी से,
कविता का नवल विलास जगा।
वाणी को पुत्र प्रसाद मिला,
भारत का जय इतिहास जगा।

कोमलता से भी अति कोमल,
कवि पन्त, तुम्हारी कविता है।
जिसको छुने को बढ़ने से,
पहले विन्यास विखरता है।

तुम गये वतन ने निन्द्रा ली,
फिर से वह शैलराज सोया।
मेवाड़ मरुस्थल पानी ने,
हे दिनकर, निज गौरव खोया।

उतनी क्षमता तो नहीं, किन्तु,
युगबोध सृजन संकल्प लिया।
नवयुग का वन्दन-अभिनन्दन,
प्रभु करुणा ने सानन्द किया।।

सर्वेश सदा सुखकर स्वामी!
निज नमन प्रथम अर्पण करता।
प्रभु-कृपा-किरण की दिव्य ज्योति,
पावन-सौरभ-वर्णन करता।।

ॐ

युगबोध

द्वितीय सुमन

भारत

प्रभा-भा-रत भूमि भारत,
    चेतना का पुञ्ज भारत,
वेद की शुचि भूमि भारत
    'साम' क़ी अनुगूँज भारत।

ज्ञान की पहली किरण जब,
    एक दिन आयी धरा पर।
मुस्कुराया गगन पहले
    फिर हँसा प्रमुदित दिवाकर।

गूँजती 'ऋक्' छन्द की ध्वनि
    पवन गाते 'साम' क़े स्वर।
वह अथर्व यजुः सु-गुञ्जित,
    सुधा सरसाता सुधाकर।

जागरण संदेश लेकर,
    धर्म का उपदेश लेकर,
प्रीति का परिधान पहने,
    ईश का आदेश लेकर।

धर्म की शुभ ज्योति भारत
    कर्म का मधुकुञ्ज भारत।
प्रकृति स्वामी' दिव्य सुषमा,
    जयतु भारत ! जयतु भारत !

हे ब्रह्मा विश्व पितामह,
हे वेद सुनाने वाले।
हे मानसरोवर वासी,
देवत्व जगाने वाले।।

सर्वोच्च शिखर की छाया में,
कैलाश शिखर तल मानस सर।
स्वर्णिम किरणें झिलमिला रहीं,
हो रहा उदित नभ पर दिनकर।।

सागर के तल से उठकर यह,
सर्वोच्च बना हिमगिरि पावन।
वैदिक संस्कृति का उद्‍गम् भी
नदियों लहरों सा जीवन धन।।

वरदान पितामह ब्रह्मा की,
श्वांसों से सुरभित दिव्य पवन।
श्रीमुख से गुञ्जित वेद मन्त्र
प्रतिध्वनित हो रहे शिखर सुमन।।

हिम मण्डित रहा हिमालय गिरि,
उपजा सागर से नील कमल।
सुन्दर मोहक शिखरो के दल,
वह आदि पुरुष का जन्म स्थल।।

हम उसी देश के वासी हैं,
गंगा यमुना की धवल धार।
है जहाँ हिमालय ख़डा हुआ,
जिसके वैभव का नहीं पार।

स्वर्णिम जिन पर खेलती धूप,
यह प्रकृति मनोहर विविध रूप।
यह स्वामी शरण नमन करता,
निर्मल मनमोहक सन्त रूप।।

फैली जिसमें हरियाली है
है अमित जहाँ वन विटप बाग।
है मोह रहे सबके मन को
गिरि सरि जलमय सुन्दर तडाग।।

यह है ऋषियों की कर्मभूमि,
है जन्म भूमि, है धर्म भूमि।
देवो के मन को मोह रही,
सुन्दर सुगन्धिमय सुखद भूमि।।

यह शूर वीर की धरणी हैं,
जो रहे काल के भी भक्षक।
मनु-राम-कृष्ण-विक्रम जैसे,
भारत माता के ये रक्षक।

बलवानों की वसुन्धरा
कश्मीर सुखदाता।
रामचन्द्र से वीर सदा जो
जग को बलदाता।।
वन्दे, वन्दे मातरम् भारतमाता।।

सीता सावित्री के समान
हुई यहाँ जग माता।
भारत की पुण्य भूमि पर
मोहित जग हो जाता।।
वन्दे, वन्दे मातरम् भारतमाता।।

सबसे पहले राष्ट्र बना यह,
गर्व महा सुख दाता।
गंगा यमुना का पुण्य नीर
किसका मन नहीं लुभाता।।
वन्दे, वन्दे मातरम् भारत माता।।

इसके परम मनोहर भू में
सबका मन रम जाता।
महा हिमालय मस्तक इसका
सबके मन को भाता।।
वन्दे, वन्दे मातरम् भारत माता।।

तीन दिशा में महासिन्धु है
पद-तल स्वच्छ बनाता।
स्वामी शरण प्रणाम कोटिशः
जय जय भारत माता।।
वन्दे, वन्दे मातरम् भारत माता।।

निकृष्ट हुई जब महाशक्ति
कटुता के गाने लगी गीत।
जब सारा जग भयभीत हुआ
हम बढे क्रान्ति पथ पर अभीत।

लहराया गगन अरुण केतन,
था कांप उठा जड़ व चेतन।
हो गयी प्रलय धरणी तल पर,
पर झुका नही अपना तन मन।।

लघु तरणी पर हम गये बैठ,
घूमा उस पर पूरी धरती।
मुस्कान देखकर अधरो की,
वह महाशक्ति काँपा करती।।

थी विजय हमारी ही रण में,
मानवता का फिर से विकास।
श्रद्धेय कान्ति है वन्दनीय,
मनु श्रद्धा का जीवन विलाास।।

कर सके नहीं वे हमें भीत,
हम बढते जाते थे अभीत।
हम सदा कर्मरत थे निर्भय,
हमने ही गाया क्रान्ति गीत।।

ॐ

युगबोध

तृतीय सुमन

कृष्ण

हे श्री कृष्ण! हे योगिराज!
युग पुरुष लोक नायक अकाम।
तुम कर्मलीन, तुम ब्रह्मलीन,
तुम स्वयम् ब्रह्म, आनन्द धाम।

तुम मानव हो, परमेश्वर हो,
नर होकर भी नारायण हो।
तुम सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हो,
'स्वामी हो, शशि, तारागण हो।

जय श्री कृष्ण देवकी नन्दन।
जय वसुदेव पुत्र जग-वन्दन।।
जयतु जयतु जय यदुकुल भूषण।
वृष्णि वंश पावन कर पूषण।।

कारागार जन्म ले आये।
मात पिता के बन्ध छुड़ाये।।
जो हो कृष्ण धर्म अनुगामी।
छूटे बन्ध बने सुखधामी।।

नन्द यशोदा के घर आये।
गोकुल में आनन्द मनाये।।
तुम पूतना शकट संहारा।
मानो दुष्ट कंस ललकारा।।

मथुरा पति उत्पात बढाया।
तब गोकुल वृन्दावन आया।।
केशी आया, धेनुक आया।
तुमने सबको मार भगाया।।

रोकी देव इन्द्र की पूजा।
वन पर्वत ही देव न दूजा।।
तुमने प्रकृति प्रेम सिखलाया।।
सबसे गोवर्धन पुजवाया।।

कुटिल बुद्धि से कंस बुलाये।
श्री अक्रूर बुलाने आये।।
तुमने वस्त्र कंस के लूटे।
मथुरा काँप गयी धनु टूटे।।

रंग भूमि पहुँचे यदुनायक।
श्रीबलराम सहित बलदायक।
पुरुषसिंह हाथी संहारा।
मुष्टिक मल्ल युद्ध में मारा।।

रंगभूमि चाणूर भयानक।
मारा कंस सहित रिपु नाशक।।
उग्रसेन सिंहासन पाये।
जय श्रीकृष्ण लोक सब गाये।

तब संदीपनि गुरु-गृह आये।
पढे वेद इतिहास सुहाये।।
गुरु आज्ञा यमपुर पर धावा।
कुल भूषण गुरुपुत्र छुडावा।।

जरासन्ध मथुरा चढ आया।
उसको तुमने मार भगाया।।
काल यवन योद्धा संहारा।
बसा द्वारिका नगर संवारा।।

तुम द्रोपदी स्वयम्वर आये।
पाण्डु-पुत्र तब आश्रय पाये।
तुमने शक्ति प्रभाव दिखाया।
कुन्तीसुत को राज्य दिलाया।।

इन्द्रप्रस्थ रच पाण्डव मानी।
राजसूय करने की ठानी।।
जरासन्ध का वध करवाया।
प्रथम पूज्य पद तुमने पाया।।

धोये चरण अतिथिगण नाना।
नहीं कृष्ण के मन अभिमाना।
सभा भवन कटु वचन उचारा।
तब शिशुपाल चक्र संहारा।।

कूट द्यूत में पाण्डव हारे।
राज्य छोड वनवास सिधारे।।
द्रुपद-सुता का मान बचाया।
वन में भी सब सुख पहुंचाया।।

तुम अभिमन्यु द्वारिका लाये।
उसे युद्ध कौशल सिखलाये।
जब दुर्योधन हठ दिखलाया।
दुर्मति को तुमने समझाया।।

शकुनि प्रभाव कृष्ण अपमाना।
सबने मृत्यु निकट तब जाना।।
अर्जुन सखा सारथी बनकर।
युद्धभूमि आये प्रलयंकर।।

अर्जुन ह्रदय मोह तब व्यापा।
पाण्डव पक्ष बहुत संतापा।।
तुमने गीता ज्ञान सिखाया।
अर्जुन का अविवेक मिटाया।।

युद्ध छोडना धर्म नहीं है।
वेदविहित वह कर्म नहीं है।।
युद्धभूमि में कैसा नाता।
बध करना है, जो भी आता।।

योगेश्वर ने कर्म सिखाया
धर्म बुद्धि का मर्म दिखाया।।
ओम् नाम जप, पाठ वेद का।
चिन्ता मिटे प्रभाव भेद का।।

कर्मयोग के गायक नायक।
ज्ञान योग के तुम वरदायक।।
प्रेम तुम्हारा विश्व भुवन में।
बसा हुआ है जन जन मन में।।

अमित पुराण सूत यश गाये।
तदपि पार कोई नहि पाये।।
तुम योगेश्वर नीति नियामक।
शक्ति पुञ्ज सब बाधा शामक।।

कृष्ण चरित शुभ धर्म उजागर।
जय जय वेद मूर्ति नट नागर।।
जय ब्रज नाथ विश्वहित कारण।
जनहित चक्र सुदर्शन धारण।।

जय रण-छोड द्वारिका वासी।
मित्र सुदामा हित अभिलाषी।।
गीता गायक भारत नायक।
जय जय वेद धर्म उन्नायक।।

मानस वेद, पृष्ठ धनुधारी।
कर में चक्र साधु-भय-हारी।।
गोपी ग्वाल प्राण प्रिय प्रेमी।
जय भगवान कृष्ण नित नेमी।।

जय रुक्मणी कृष्ण पटरानी।
सत्या जाम्बवती अति मानी।।
कालिन्दी रोहिणी भवानी।
सत्यभामा लक्ष्मणा सुदानी।।

वे सहस्र षोडष सुकुमारी।
मुक्ति हेतु प्रिय कृष्ण पुजारी।।
जरासन्ध बन्दी सब राजे।
मुक्त हुए, प्रभु ह्रदय विराजे।।

वीर युधिष्ठिर शासन कारण।
कृष्ण सदा जन कष्ट निवारण।
जन नायक प्रभु सदा अकामी।
जयति जयति जय जय जय स्वामी।।

जो हो कृष्ण कर्म अनुयायी।
उसके ह्रदय न चिन्ता आयी।
जो श्रीकृष्ण चरित यह गाये।
स्वामी शरण सदा सुख पाये।।

बहुत दिन मुरली बजायी
  रास को अब बन्द कर दो।
वे प्रणय के गीत छोड़ो
  अब विदा मधुछन्द कर दो।।

साम के स्वर घुट गये जब,
  क्या मधुर हम गीत गायें।
आज फूँको शंख योगी
  भू-अनिल में ओज भर दो।।

देव! कलुषित धर्म धरणी,
  छटपटाती वन्दिनी-सी।
वेद की वह ज्योती सोयी
  है अमावस चाँदनी-सी।।

बेड़ियां टूटी नहीं हैं,
  खुल गयी है हथकड़ी बस।
जगें बीणापाणि 'स्वामी'
कुछ बजे रण रागिनी सी।।

बांध लिया जब पाश घने,
  फिर बेबस देख लगे तड़पाने।
जीवन के धन नीति न ये,
  तुम जो इस भांति लगे कतराने।

कौन सुने, मन चाह नहीं,
    अब यों तुम रंग लगे दिखलाने।
बोल अजेय, नहीं हिय स्नेह,
    लगे फिर क्यों 'स्वामी' ललचाने।

दान विधान महायश पाय,
    महान हुए तुम भी यह माना।
माखन चोर, चुराकर चीर,
    बने तुम वीर बड़े, पहचाना।

झूँठ दिया तुमको वह नाम,
    पुकार सुना, सुनके चल आना,
आज अजेय हुए तुम बन्धु,
    लिया 'स्वामी' मन दान न जाना।

ॐ

युगबोध

चतुर्थ सुमन

वेदना

क्यों शिखा वुझ गयी,
क्यों शिखा कट गयी,
सूत्र क्यों मिट गये,
सूत्रता मिट गयी।

सूत्र में हम बँधे,
सूत्र धारण किये,
सूत्र को पढ़ रहे,
सूत्र को पा गये।

सूत्र को छोड़कर,
सूत्र को तोड़कर,
आज हम मिट गये,
आज हम लुट गये।

वह शिखा जब नहीं,
वह शिखा अब नहीं,
आज 'स्वामी' मनुजता
मिटी सब कहीं!

जानकी जान की विपदा में,
पर राम नहीं शिव राम हुआ।
कामना हमारी क्यों रहती,
जब योगिराज निष्काम हुआ।

यदि विजय प्रेम की होती है,
क्यों स्नेह हमारा 'अजय' रहा?
'स्वामी' न प्रभाव प्रभावमयी,
क्यों व्यर्थ हमारा विनय रहा?

पथ पर बढ़ने का साहस है,
इससे तो इनकार नहीं है।
पर पाथेय बिना मरने का,
दुस्साहस हम कर न सकेंगे।

नाव बिना पतवार चलेगी,
कितनी दूर लहर में माझी।
इँधन बिना तुम्हारी गाड़ी,
कितने मंजिल पार करेगी।

बिना अन्न के जर्जर तन भी,
कितना बोझ उठा पायेगा।
हेतु बिना कोरे भावों पर,
कब तक यह जग प्यार करेगा।

गगन कुसुम कह लो जीवन को
तथ्य नहीं अनुमोदन देंगे।
'स्वामी' केवल भाव-कल्पना
से अभाव को भर न सकेंगे।

तुम कहते मुस्कान नहीं है
अधर हमारे क्यों सूखे हैं।
मैं कहता हूँ मित्र अभी तक
जीवित हूँ, इतना क्या कम है?

एक दर्द हो तो उसका तुम
कुछ उपचार करोगे निश्चय,
इतने भी कमजोर नहीं थे,
जो माने इस तरह पराजय।

तूफानों से टकराने का
अपने भी मन में साहस था।
मेरा यह जीवन पथ सारा,
सिर्फ गहन पीड़ा का संचय।

फिर भी हम भयभीत नहीं थे,
झंझावात झेल ले जाते।
शिथिल पड़ गयी सांसें अपनी,
अब कैसे पथ पर बढ़ पाते।

बड़े जोश से बेड़ा साजा था
सागर में छोड़ दिया था।
बड़ा भरोसा था हाथों पर,
जब हमने पतवार लिया था।

यह निश्चय था लहू बहे पर
आंसू नहीं बहायेंगे हम।
यही भूल थी, पतवारों पर,
नौका ने विश्वास किया था।

नहीं थका है दुर्जय राही,
हुआ नहीं साहस निर्बल है।
क्यों पतवार दे गये धोखा,
'स्वामी' पथ इससे दुर्गम है।

लूटा-लूटा-सा यह आंगन,
सिमटा-सिमटा-सा यह जीवन,
यह भीड़ भरा सूना-सा घर।

यह अपनेपन से बहुत दूर,
बिखरा-बिखरा सहमा कुटुम्ब,
अपनी गरिमा से दबा हुआ।

ये डरे-डरे से देव-चित्र,
ये घुटे-घुटे ऋषियों के स्वर,
ये छुपे-छुपे से क्रान्ति चरण।

यह मायापति की माया-सी,
कुछ निन्द्रा सी, कुछ मूर्च्छा सी,
स्वप्नों में सब ही डूबे से।।

संसार सभी का पृथक्-पृथक्,
जैसे अपने में सीमित-सा,
कटु अर्थतन्त्र का ही शासन।

प्रत्येक व्यक्ति कुछ निज सा ही,
अपना जीवन, अपना दर्शन,
'स्वामी' अपना मुख जग दर्पण।

जोंक बनकर खून सारा चूस डाला,
गीध बनकर नोंच डाली बोटियाँ हैं।
लेखनी कवि की तुम्हारे गीत गाये,
छीन लीं, जो मिलीं सूखीं रोटियां हैं।

भव्य महलों को खड़े मजदूर करते,
शीत, वर्षा, चिलचिलाती धूप सहकर।
द्वार उसके बन्द उनके वास्ते ही,
देख लें कितना सुखद, कुछ देर रहकर।

सींचकर जो खून से अपने उगाते,
अन्न का दाना उन्हें मिलता नहीं है।
श्रमिक सारे फैशनों के वस्त्र बुनते,
स्वयं मर जाते, कफ़न मिलता नहीं है।

नग्न बैठी हुई है मजदूर नारी,
अंग ढकने के लिए कपड़े नहीं है।
भूख से व्याकुल करेंगे क्यों न चोरी,
पाप कैसा भूख में करते नहीं है?

ठगी, चोरी, लूट, हिंसा बढ़ रही है,
क्रूर सत्ता किस तरह सें रोक लेगीं?
गिरा पानी जो नदीं बन पर्वतों से,
बल कहां चट्टान में जो टोक देगी?

उठ पड़े यदि अस्थि पंजर तो मिटोगे,
राख ही हो जायेगा शासन तुम्हारा।
आज सत्ता की चमक में चौंधियाये,
इसलिए है दृष्टि-पथ अन्धा तुम्हारा।

लक्ष्मी के वाहनों, धन के पुजारी!
दस्युओं की राह यह मंहगी पड़ेगी।
मृत्यु भी 'स्वामी' मिलेगी तुम्हे ऐसी,
देह अर्थी के लिए तड़पा करेगी।।

रोटी दे भाई रोटी दे,
तन को एक लंगोटी दे।
फटी पुरानी मोटी दे,
रमिया को एक धोती दे।।

कलुआ क्यों बर्तन धोये।
क्यों रमुआ बचपम खोये।
उसको पढने जाने दो।
लिखना नाम सिखाने दो।।

बस किस्मत को रोता है,
फुटपाथों पर सोता है।
उसको भी एक घर दे दो,
महल नहीं, छप्पर दे दो।।

माँ का दिल है धड़क रहा।
वह बुखार से तड़प रहा।
उसको दवा दिला देते।
तुमको राम बता देते।।

किया मुकदमा बाबा ने,
नाती फंसा कचहरी में।
दौड़ अदालत की ऐसे,
चीर द्रोपदी के जैसे।।

इससें तो छुटकारा दे,
जल्दी न्याय सहारा दे।
लुटकर भी चुप रह जाना,
नहीं अदालत तुम जाना।।

लुटपिट कर भी हम अच्छे,
रहे पुलिस से अगर बचे।
इस शासन से दूरी हो,
चाहे जो मजबूरी हो।।

कैसी दशा बना दी है,
संस्कृति की बरबादी है।
अपनी भाषा पढ़ने दो,
सबको आगे बढ़ने दो।।

भारत ज्ञान विकास दिखा,
अपना अब इतिहास सिखा।
इतना भी यदि कर लेगें।
स्वामी आगे बढ लेंगे।।

उनकी सत्ता ऐसी है,
अपनी ऐसी तैसी है।
क्यो बेकारी हम झेले,
हम भी हँसे और खेले।।

भैया की बेकारी है,
घर भर की लाचारी है।
छोटी सी रोजी दे दो,
सूखी सी रोटी दे दो।।

नहीं हमें ऊँचा बनना,
जिस लायक हैं, दे देना।
रोजगार जैसा भी दे,
लेकिन कुछ सबको दे दे ।।12।।

बोल गया भौंरा उपवन
का बेड़ा गर्क हुआ।
एक चमन के दो फूलों में,
कितना फर्क हुआ।।

वर्ग विहीन समाज बनाने
का टूटा सपना,
बस केवल बच रहा मन्त्र
का माला में जपना।

जो गुलाब सा काँटों में है,
सौरभ लिये खिला,
उसे धूल मिलती है या
फिर कोई नयी शिला।

हुई कहाँ पर भूल! फूल
का जीवन नरक हुआ।
एक चमन के दो फूलों
    में कितना फर्क हुआ।।

जो टहनी पर सूर्यमुखी की
    पा संयोग खिला,
उसका स्वागत करता
    हर पल यह संसार मिला।

चन्द मालियों ने फैलाया
    ऐसा रोग नया,
हरा-भरा जन-आशाओं
    का उपवन सूख गया।

षड्यन्त्रों में फंस प्रतिमुख
चेतनता अर्क हुआ।
एक चमन के दो फूलों
    में कितना फर्क हुआ।।

माली के हाँथों उपवन की
    कलियाँ मसल गयीं,
पैरों के नीचे सारी
    गरिमायें कुचल गयीं।

वेद योग अध्यात्म धर्म
    सब पिछड़ापन माना,
योगा एक्सरसाइज भी
    तो फैशन ही जाना।

हठधर्मी के आगे निष्फल
'स्वामी' तर्क हुआ।।
एक चमन के दो फूलों
    में कितना फर्क हुआ।।

फूलों की कोमल शैया पर सोने वाले,
कांटों के चुभने की पीड़ा को क्या जाने?
जो आलीशान महल में जीवन बिता रहे,
बेघर होने की पीड़ा को क्या पहचाने?

ये भव्य सुखद प्रासादों में बैठे-बैठे,
अति भीषण सूखे से संघर्ष करेंगे क्या?
सड़ रहा अन्न जिनके गोदामों में रखा,
वे सूख रही फसलों का त्राण करेंगे क्या?

जिनके पैरों में कभी बिवाई फटी नहीं,
वे तड़प रहे औरों की पीड़ा क्या जाने?
सुखमय वाहन पर जिनका 'स्वामी' सफर हुआ,
वे पग के छालो के दुःख को कैसे माने?

संघर्ष पर्व का हमसे इतना आग्रह है,
भारत को फिर से देखें और विचार करें।
अति जटिल तंत्र में उलझ गया जो जन गण मन,
जाग्रत हो फिर चेतना नयी संचार करें।

क्या भारत में जनतन्त्र सफल हो पायेगा,
जब तक यह अफसरशाही बढती जाती है,
व्यवहार कर रहा व्यक्ति दास-सा औरों से,
जब कोई कुर्सी उसे हाथ लग जाती हैं।

अधिकार पैंतृक अपना समझे घूम रहें,
वे भाग अन्य लोगों का क्यों स्वीकार करें?
जो अंग्रेजी अफसर जनता को पशु के सम,
है समझ रहा उससे क्या शिष्टाचार करें?

छोटे से काले बादल के दुस्साहस से
हो बन्दी सूरज की किरणें छटपटा रहों,
उसकी गरमी से स्वयम् जले जाते फिर भी
धरती जाड़े त्रस्त्र दांत किटकिटा रही।

जब भी होता है लोप धर्म का धरणी से
ऋषियों की वाणी को बेकार बताते हैं,
पश्चिम के सूखे टुकड़े आगे दिखते ही
नेतागण श्वानों जैसी पूँछ हिलीते हैं

प्राचीन दासता की सस्वर गौरव गाथा
जब आज हमारा शासन हर्षित हो गाता,
निज स्वाभिमान को त्याग शहिदों के उर को
है स्मारक पर शासन का अब भी बतलाता।

हो रहा नित्य परतंत्र भावना का वन्दन,
'स्वामी' स्वाधीन हुए, कैसे स्वीकार करें?
जो माल हमारा चुरा रंग हैं बदल दिये
उन भ्रष्ट गिरगिटों का कैसे आभार करें?

जिसके लिए गलाकर जीवन,
यह दुःख मोल लिया है हमने।
जैसे कुछ पहचान नहीं थी,
यों मुख मोड़ लिया है उसने।।

उसके जीवन में सुख ही सुख,
दुःख का चरण नहीं देखा है।
भला किसी के दुःख-ज्वाल में
व्यर्थ स्वयम् कोई दहता है।।

मेरी केवल सत्य सम्पदा,
जग का वैभव कहाँ खरीदे।
उनके वैभव के सागर को,
आँसू कहीं न खारा कर दे।।

इसीलिए वे दूर हो गये,
मेरे आँसू की धारा से।
वे ज्योतिर्मय रवि के स्वामी,
निकल गये हैं अंधियारा से।।

सूख सके यदि आँसू तो वे,
लौट सकेंगे मन कहता है।।
सुख में खूब सजाई महाफिल,
दुख में साथ कौन रहता है।

सोच सका जब उनका हित तो
केवल मेरे हैं, सम काया।
संकट ने इस योग्य न छोडा,
दूरी बढने का दिन आया।।

जिस दीपक में तेल न बाकी,
उस पर कब पतंग आता है।
शरन समर्थ पुनः बन पाये,
तो फिर दूर कौन जाता है।।

लोग कहते हैं जल इन्कलाबी शमाँ,
बाँटती अन्त में रोशनी कुछ नयी।
आग ऐसी लगी जल गये सब स्वपन,
किन्तु जीवन की राहें न रोशन हुई।

स्वप्न ही देखते रह गये हम यहाँ,
इस धरा पर महल कुछ बनाया नहीं।
सिर्फ कागज रंगे हैं, लकीरें खिंचीं,
नींव भी आज तक डाल पाया नहीं।

स्वप्न देखा कि उस नील आकाश तक,
प्यार का हम बनायेंगे ऊँचा महल।
फिर लिखेंगे सितारों के अक्षर बना,
जगमगाता हुआ नाम तेरा विमल!

कल्पना के बनाये महल ढह गये,
खण्डहर हो गये, देखते रह गये।
बाढ़ जुल्मों सितम की कहर ढा गयी,
एक पल में शहर के शहर बह गये।

वह तमन्ना लुटी और आशा मिटी,
इस जहाँ में अंधेरा-अंधेरा हुआ।
राह 'स्वामी शरण' देखते रह गये,
सूर्य सोया रहा, कब सबेरा हुआ?

श्रीराम राज्य का स्वप्न ठीक,
अपनी संस्कृति, भाषा भी हो,
हिन्दुत्व हमारा स्वाभिमान,
पर निश्चित परिभाषा भी हो।

है अर्थ हिन्दु का ज्ञानवान्
प्रज्ञा-विचार-चिन्तन-विवेक।
आधार सनातन धर्म वेद,
है मूल एक, है लक्ष्य एक।

भाषा के बिना धर्म कैसा
स्वातंत्र्य नहीं अभिमान नहीं,
संग्राम अधूरा है, जब तक
अपनी विद्या-विज्ञान नहीं।

तोड़ा है जीर्ण-शीर्ण ढाँचा,
अंग्रेजी की कारा तोड़ो,
भाषा, इतिहास बने अपना
तब भारत से नाता जोड़ो।

वैदिक भाषा का ज्ञान मिले,
अंग्रेजी पढ़ना मान नहीं,
ऋषिययों के पावन भारत में
अंग्रेजी हो पहचान नहीं।

दासता व्यूह को तोड़ो अब,
भारत की मुक्ति निकट आयी,
वेदों का पढ़ना कठिन न हो,
संस्कृत भी हमने अपनायी।

कैलास शिखर भी मुक्त करें,
शिव की आत्मा भी रोती है।
है सत्य-धर्म ही बलशाली,
इसलिए न श्रद्धा खोती है।

स्वातंत्र्य समर का नायक भी
बह वीर ज़फ़र सेनानी था,
उस वीर शिवा का सेनापति
मुस्लिम बाँका बलिदानी था।

जो कहना है, वह कहते हैं,
भाई का नाम विदेशी क्यों?
वे मन से भारतवासी है,
फिर प्रिय भाषा परदेशी क्यों?

तोड़ोगे ताजमहल क्यों तुम,
क्यों संसद भवन गिरा दोगे,
यह लाल किला, जामा मस्जिद,
सीकरी नगर बिखरा दोगे।

ये भवन हजारों तोड़ोगे
खण्डहर देश सारा होगा,
तुर्कों-अरबों की हानि नहीं,
विध्वंस देश प्यारा होगा।

दंगों से सारे भारत को,
नुकसान उठाना ही होगा,
यह देश हिन्दुओं का है तो,
उनकों समझाना ही होगा।

हो अर्थ शक्ति, हो राष्ट्रभक्ति
अपनी भाषा बोले स्वदेश।
समरसता में विकसे समाज
'स्वामी' भारत तब महा देश।

श्रीराम नाम की ध्वजा उठाकर निकले जो,
नव राम राज्य के नये-नये ठेकेदारों,
तुम संविधान भी अपना नया बना डालों
पर सच, सच कहना मन्दिर के पहरेदारों।

मनु के विधान के डर से जो आतंकित हैं
उनको उत्तर दो, संविधान में क्या होगा,
जो जातिवाद के ऊँच-नीच से आतंकित,
उनका भविष्य नव राम राज्य में क्या होगा।

है राम नहीं पत्थर का कोई 'राम लला'
जो कैद किसी ईंटों के मन्दिर में होगा,
युग-पुरुष राम इतिहास-पुरुष है, शासक हैं
तो राम राज्य भी उसके जीवन में होगा।

सच कहना क्या तुम किसी एक के कहने से
अपनी पत्नी को घर से बाहर कर दोगे।
उत्तर दो, क्या तुम संविधान में भी अपने,
इस तरह निरंकुश विधि-विधान को भर दोगे?

यदि साहस है तो कहो बात तुम साफ-साफ
नारी को कोई भी अधिकार नहीं होगा,
कौशल्या सौतों की आरती उतारेगी
बहुपत्नी रखने का अधिकार सही होगा।

यदि तुम्हे समर्थन मिल जाये अपने घर में,
हम सबसे आगे बढ़कर तिलक लगा देंगे,
यदि तब भी तुमको अपना दल नेता माने
तो सभी विरोधी दल हम दूर भगा देंगे।

या कहो, राम साधारण नर-शासक ही थे
वे देव नहीं, ऋषि नहीं और भगवान् नहीं,
हो साहस अगर राम को दोषो ठहराओ
यह रूढ़िवाद 'स्वामी' भारत पहचान नहीं।

जय-जय-जय भारत भाग्य विधाता अभिनन्दन,
सब ओर किया जाता है मीठे नारों से।
पर आज आरती मैं उतारता हूँ तेरी,
कुछ सच्चे तीखे अनुपम जनित विचारों से।

पूजन वन्दन नैवेद्य चढ़ाता हूँ तुमको,
इस देव-भूमि पर वन्दन-गान तुम्हारा था।
तेरी महिमा का मूल्य कोटि तैतीसों ने,
तब मुक्तकण्ठ से गा-गा कर स्वीकारा था।

प्राचीन समय से अभिनन्दन का समारोह
तेरा घर-घर में भव्य मनाया जाता है।
जो खेल-खेल प्राणों की होली अमर हुए
उनका पावन यशगान सुनाया जाता है।

हर बार चमन से तोड़-तोड़ कर सुमनों को
गुलहार तुम्हारे नामों पर गूँथे जाते।
वे तेरे मन्दिर के पुजारियों को पहना,
ये देव मनुज अपनी श्रद्धा को दिखलाते।

यों तोड़-तोड़ कर फूल देश के उपवन से,
पुष्पित बागों को इन सबने वीरान कर दिया।
है आज नहीं मकरन्द किसी गुल के अन्दर,
कागज के फूलों से सारा उद्यान भर दिया।

कागज के नकली फूल बाग को क्या देंगे?
भारत की क्यारी इनके दम पर महकेगी?
'स्वामी' नकली मधु पर मधुकर क्यों आयेंगे,
पंचम स्वर वाली डाली पर क्यों चहकेगी?

ॐ

युगबोध

पञ्चम सुमन

संकल्प

मानव का कर्मयोग सम्बल,
विधि को अब भी स्वीकार नहीं।
लेकिन मैं भी कह दूँ कैसे
झंझाओं से हैं प्यार नहीं।

कल्पना स्वप्न साकार बनें,
माधुरी बसी हैं शूलों में,
स्वीकार पराजय क्यों कर लूँ
कुछ पाया ही है भूलों में।

माना है प्रकृति कठोर बहुत
शासन का गुण है निर्दयता,
लेकिन मानवता का सम्बल
है शक्ति साधना निर्भयता।

बस नीति हमारी शक्ति रहे,
हो प्रीति माधुरी जीवन में।
हम कर्मयोग के पथिक बनें,
परिवर्तित भू-नन्दन वन में।

विस्तृत नभ में ज्यों क्षुद्र बिन्दु,
वह कोई स्वर्ग रहा होगा।
मानव के तप से हिमगिरि पर,
वह दिव्य प्रवाह बहा होगा।

तप नहीं हमारा लुप्त हुआ,
मानव मन दिव्य बनायेंगे।
हम दिव्य चेतना के बल से,
फिर अलकापुरी बसायेंगे।

देखेंगे कैसे धरती पर
'स्वामी' वह स्वर्ग नहीं आता,
देवों का तेज नहीं आता,
ऋषियों का भर्ग नहीं आता।।

हम दीपावली प्रकाश जिसे
कहते हैं दीपों की अवली,
वह निशा अमावस्या की है,
चन्द्रमा-हीन-काली-काली।

यह दीपों की माला प्रतीक
मानव प्रयास पुरुषार्थ अटल।
इस तमाछन्न रजनी में भी,
कर दें प्रकाशमय यह भूतल।

जन-जन के मानस से,
जब होगा तमस् दूर,
जिस दिन घर-घर में
ज्ञान ज्योति जल जायेगी।

हम उस दिन दीपावली
मनायेंगे 'स्वामी',
जिस दिन संस्कृति की
सीता वापस आयेगी।।

मृत्यु मिलती नहीं मांगने से अभी,
विश्व पूजा करेगा तुम्हारी कभी।
है अंधेरा अगर, बन्धु! विश्राम कर,
शीघ्र ही ज्योति को पा चलेंगे सभी।

मानता हूँ रात काली है दुःखों की,
शीघ्र आयेगी उषा उजली सुखों की।
मार्ग पर 'स्वामी शरण' आलोक होगा,
देखना तब स्नेह-सरिता दुर्मुखों की।

जिन्दगी में वह कभी कुछ कर नहीं सकता,
कण्टकों से स्वयम् ही जो लड़ नहीं सकता।
सिर झुकाया देखकर जिसने खड़े तूफान को,
लक्ष्य पर अपने चरण वह रख नहीं सकता।

बिना तेल के दीप जलता नहीं हैं,
कि ईधन बिना जल उबलता नहीं है।
अगर बन्धु, खुद में नहीं शक्ति है तो,
किसी कार्य का फल निकलता नहीं है।

हाथ धरकर हाथ पर सोना नहीं आया,
गलतियों के नाम पर रोना नहीं आया।
खण्डहर पर नीव रखी नये महलों की,
बुद्धि बल उत्साह में खोना नहीं भाया।

स्वप्न जो देखे सभी साकार होंगे,
कष्ट के दिन शेष बस दो-चार होंगे।
पूर्ण होंगी सब हमारी कामनायें,
और 'स्वामी' लक्ष्य करते प्यार होंगे।

शक्ति अब साधना के लिए चाहिए,
अर्चना-रंजना के लिए चाहिए।
क्रान्ति 'स्वामी' जगानी पड़ी यदि हमें,
शान्ति की स्थापना के लिए चाहिए।।

ज्ञान वेदों का ले हम सुनाने चले,
राष्ट्र में दिव्य गौरव जगाने चले।
वेद के धर्म ध्वज को उठाने चले,
देव हम देवगण को जगाने चले।।

वेद की शक्ति को देव पहचान लो,
देव हो, दिव्यता शक्ति को जान लो।
चेतना हो, ह्रदय में यही ठान लो,
दिव्य चेतन स्वयम् ब्रह्म हो, मान लो।

वीर हम हैं सदा रण में बढते रहे
और पाखण्ड से वीर लङते रहे।
चेतना के शिखर दिव्य चढते रहे,
चक्रवातों में हम नित्य बढते रहे।

खोजेगें हम अम्बर महान,
द्यौयान बनेंगे शक्तिमान।
नव युग के हम मानव महान,
यह अभिनव मानव की उड़ान।।

कल्पना हमारी उडती है,
इस अति विशाल अम्बर तल में।
सीमित अपना व्यक्तित्व नहीं,
इस लघु ग्रह के ही जल - थल में।।

प्रत्येक सूर्य पर जाएंगे,
खोजेगें ग्रह ग्रह पर जाकर।
अम्बर के कोने कोने में,
हम खोज करेगें जा जा कर।

हम खोज करेगें जीवों की
जो दूर ग्रहों के वासी हैं,
हम खोज करेगें सस्कृति की
अन्वेषण के अभ्यासी हैं।

हम कष्ट झेलने का अद्‌भुत
अभिनव मानव साहस रखते।
विश्वास हमें हम वीरो पर,
सर्वेश सदा करुणा रखते।

अगर प्रशासन बदल सके तो,
यह युग सहज बदल सकता है।
मानवता के पथ पर जग में,
मानव फिर से चल सकता है।

राजा यथा, प्रजा वैसी ही,
लोक उक्ति यह बनी पुरानी।
राम राज्य के निर्मल युग की,
कहता अब तक विश्व कहानी।

और बात उज्जैन नगर की
हम सबको अज्ञात नहीं है।
विद्वानों से भरा नगर वह,
आधेक पुरानी बात नहीं है।

यदि सुमन्त्र मन्त्री हो जाये,
राम-राज्य फिर मिल सकता है।।
यदि विक्रम माली हो 'स्वामी'
उपवन फिर से खिल सकता है।।

दिव्यलोक का पुनः देवगण,
नव निर्माण कराने आये।
धर्मवीर नर देव इन्द्र का,
नव-अभिषेक रचाने आये।।

आज स्वर्ग में असुर शक्ति का
दुर्वह घोर अनैतिक शासन।
झुका स्वर्ग मस्तक लज्जा से,
अब कैलाश न शिव का आसन।

सरस्वती की धार पी गया,
वेद विलोप-मरुस्थल भीषण।
मानव को लड़ना ही होगा,
पुनः दिव्य देवासुर नव रण।

मानव के अन्तर्विरोध ने,
देवो के मानसिक पतन नें।
असुर शक्ति को प्रबल कर दिया,
आज अशिव ताण्डव नर्त्तन ने।

भृगु, वशिष्ठ को धर्म-राज्य में
भू-साम्राज्य मिलाना होगा।
विश्व-शान्ति के लिए क्रान्ति का
जाग्रति-राग सुनाना होगा।

सत्य, धर्म, ऋत-शाश्वत बल से,
इन्द्र ध्वजोत्सव पुनः मनायें।
मुक्ति हेतु हम वेद मन्त्र से,
भू-आकाश पुनः गुँजायें।

हो आनन्द पूर्ण जन-जीवन,
योग-साधना सोम पान कर।
विद्या सभी अभाव मिटा दे,
चिदानन्द सत् रूप ध्यान धर।

कहीं शुक्र ऋषि असुर गणों का
गुरुपद पुनः न लेने जायें।।
अग्नि, सूर्य शिव, बनकर 'स्वामी'
दिव्य आत्म-चेतना जगायें।।
नव चेतना जगाने आये।।

उपहार सजा कर लायें हैं अब,
हम फिर से अंगारों का।
इससे ही सम्मान बढ़ेगा,
देश के पहरेदारों का।।

चुन-चुन कर सिर काटेंगे हम,
माता के गद्दारों का।
बाल सूर्य हो रहा उदय अब,
काल मोह निशि तारों का।।

उबला नहीं अगर अब भी तो,
खून नहीं वह पानी है।
संघर्षो से भय खाती हो,
तो वह व्यर्थ जवानी है।

मां कहती अपने लालों से,
यह युग ही बलिदानी है।
लिखी खून से भारत की,
लम्बी इतिहास कहानी है।

मानव धर्म मिटा देने को,
सत्ता आज मचलती है।
भारत का इतिहास मिटाने,
को यह आंधी चलती है।

धर्म ज्योति झंझवातों,
तूफानों में ही जलती है,
सावधान, भारत वीरों की,
दीर्घ निशा अब ढलती है।।

कविते, दे वह संदेश हमें,
धरणी तल पर भूचाल उठे।
डगमग - डगमग डोले धरणी,
कम्पायमान हो काल उठे।।

सम्पूर्ण विश्व में लहराये,
अध्यात्म ज्योति, पावन उज्वल।
हो नष्ट-भ्रष्ट अन्याय सर्व,
हो धर्मधरा, यह धरणीतल।।

पाखण्डी दीपक बुझ जाये,
मिथ्या का शशि भी छिप जाये।
भू पर ऐसा तूफान उठे,
सब कुछ परिवर्तित हो जाये।।

डगमग - डगमग हो गिर जाए,
आडम्बर भवन शक्तिशाली।
कम्पित हो यह सम्पूर्ण धरा,
सब कुछ धारण करने वाली।।

अत्याचारी सबे गिरे भूमि,
यो उलट पलट धरणी जाए।
भू पर ऐसा भूचाल उठे,
आतंक शक्ति सब मिट जाये।।

ज्वाला कुछ ऐसी धधक उठे,
वीभत्स भयानक छा जाये।
अब क्रान्ति ज्वाल ही लाल लाल,
इस धरणी पर छा जाये।।

पाखण्डी अत्याचार जले,
मिथ्या विनाश सब हो जाये,
नव क्रान्ति ज्वाल जागे ऐसी,
यह युग परिवर्तन हो जाये।।

नैतिक बल और सत्यता को,
पावन धरणी धारण कर ले।
मिथ्याडम्बर पद तले कुचल,
जीवन में सत्य भाव भर ले।

मानवता नैतिकता व सत्य,
हो मुक्त शक्ति के पिंजर से।
सारे जग में गुंजार उठे,
स्वामी शुभ सत्यमेव जयते।।

ॐ

युगबोध

षष्ठ सुमन

स्मृति

अपने जीवन में जो तुमने
हमको प्रथम दिया उपहार।
कर पावन लेखनी उसी से
प्रस्तुत काव्य सुमन का हार।।

प्रथम कृत्य जो रहा तुम्हारा,
प्रथम प्रबन्ध बना मेरा।
आज तुम्हारे जन्म दिवस पर,
अर्पित कृत्य तुम्हें, तेरा।।

जितना साधनाहीन, दया का
वह उतना अधिकरी।
स्वयं समर्थ, माँगता भिक्षा,
वह जन है व्यभिचारी।।

लता विटप का अवलम्बन ले,
सुरभि बाँटती जग को।
अनिल-दया से रज भर देती,
कष्टों से जग-मग को।।

उचित और उपयोगी तरु की,
करुणा ज्ञानमयी है।
रज को 'शरण' पवन की अनुचित,
अति अविवेकमयी है।।

जब एक द्रोपदी की लुटती थी लाज कहीं,
दौड़े आते थे तुम्ही भरे दरबारों में।
अब सरेआम लज्ञा बाला अबलाओं की,
नीलाम हो रही गलियों में, बाजारों में।

तुम दुर्योधन की चमक-दमक में चकाचौंध,
फिर कौन विदुर का समाचार ले पायेगा?
सोने चांदी की जंजीरों में बंध नायक,
शोषक शासक से न्याय नहीं कर पायेगा।

अरे! कृष्ण के चक्र सुदर्शन, क्यों कुण्ठित हो,
क्या अब रण में तुम नहीं विजय दे पाओगे?
क्या कहा, अहिंसा का युग है अब धरती पर,
तुम रक्त-पात का पाठ नहीं सिखलाओगे।

बन्धुत्व, अहिंसा, प्रेम-युद्ध में कायरता
ये सदा विरोधी हैं, इनमें है मेल नहीं।
पुरुषार्थ अहिंसा वीरों का धीरों का है,
बन्धुत्व धर्म कायर लोगों का खेल नहीं।

अन्यायों का हम करते रहें विरोध सदा,
रख धैर्य धर्म, पावन यह धर्म अहिंसा हैं।
पर न्याय हेतु लड़ना मर जाना पाप नहीं,
अन्यायी के सम्मुख भय खाना हिंसा है।

ले नाम अहिंसा का कायर बन करके तुम,
मत महापुरुष बापू को यों बदनाम करो,
मोहन के वीर धर्म का घोष करो 'स्वामी'
मानव को करना मुक्त पूर्ण यह काम करो।

कुकृत्यों का जब था बढा भार भू पर,
आये थे मोहन नयी ज्योति लेकर,
द्रवित हो गये सुनकर करुणा कहानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

पश्चिम में देखा अनाचार होता,
मिला विश्व जब यह विलखता व रोता,
मिटाया सभी कष्ट वह त्राण दानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

भारत में देखा अनाचार होते,
दुःखी निर्बलों पर कदाचार होते,
निकल ही पडा उनके आखों से पानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

चम्पारन में देखा महाकष्ट था जब,
विकल हो उठे थे अमित शक्तिमय तब,
पोछा था दीनो के नयनो का पानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

श्रमिक वर्ग पीड़ित माहा कष्ट आँधी,
अति शीघ्र पहुँचे वहाँ मोहन गांधी,
दिया रोक वह कष्ट करुणा कहानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

देखा पराधीन भारत हमारा,
अनाधीन वह कर गया सबका प्यारा,
स्वामी शरण देव ऋषि की कहानी।।
सुनाती है बच्चों को माता कहानी।।

ॐ

युगबोध

सप्तम सुमन

दर्शन

बन्धित होकर जब मानवता,
धरणी पर रोदन करती थी।
दानवता की क्रूर-यातना,
चरम वेग से जब बढ़ती थी।।

जब रत्नाकर की लहरों पर
दानव का शासन चलता था।
दुष्टजनों के शासन में जब
दिनकर सदा दिवस रखता था।।

ग्रीष्म-काल उनके भवनों में,
शीतल मलय-गन्ध बहता था।
शीत-काल में पवन उष्ण हो,
सदा बसन्त रचा करता था।।

पालन कर आदेश सदा ही,
करे पवन संदेश-संचरण।
धन्य समझता निज को मानव,
पा दानव के पद के रज-कण।।

ज्ञान चरण-सेवक बनकर जब
सेवा में तत्क्षण तत्पर था।
दुरुपयोग सें मनुज-रक्त का,
झर-झर-झर झरता निर्झर था।।

सभास्थान पर जब मानव के
निर्भय हो भुसुण्डि चलती थी।
बाल-वृद्ध, नर नारी सबकी,
चीत्कारें गूँजित होती थीं।।

अग्नि-गोलिकाओं की वर्षा,
धर्म-धरा पर होती रहती।
अगणित मानव चीत्कारों से
शान्ति धरा की खोती रहती।।

धर्म-धरा पर दानवता का
नग्न-नृत्य निर्भय होता था।
माँ-भगिनों की मर्यादा का
प्रति पल क्षण मर्दन होता था।।

स्नेह-सिन्धु प्रभु-भक्त दयामय,
सदा महान धर्मव्रत-धारी।
करुणा की प्रतिमा थे ईसा
सत्य-शील-समता-आचारी।।

ऐसे महापुरुष - अनुयायी
अपने को वे दानव कहते।
क्या विडम्बना? धर्म नाम पर
अत्याचार सर्वदा करते।।

ईसा का अनुयायी जग को,
बना रहें थे जब वे दानव।
वह महान आत्मा रोती थी,
त्राहि-त्राहि करता जब मानव।।

कुटिल और पाखण्ड-पूर्ण पथ,
    क्यों स्वीकारें मानव जन वह?
'जग को ईसाई कर देंगे'
    छोड़े कैसे दानव प्रण यह?

भय-भुसुण्डि रख चित्र सन्त का
    कह दे मानव 'हम ईसाई'।
यही धर्म क्या हम बता दें
    ईसा का कोई अनुयायी।।

बढ़ा अधर्म चरम-सीमा तक,
    करुणा न्याय न उसने जाना।
अपमानित कर रहें सन्त को,
    सिद्धान्तों को एक न माना।।

मानवीय अधिकार मांग ले,
    राजद्रोह का वह अपराधी।
राष्ट्र-भक्ति की बात करे जो
    उस पर महा कष्ट की आँधी।।

गौर-वर्ण ये पश्चिम-वासी
    वसुन्धरा को कर आतंकित।
जिनके भय से इस धरणी की
    सन्त-मण्डली रहती शंकित।।

श्याम वर्ण वाले मानव को,
    कृष्ण-श्वान कहकर अपमानित,
करते तथा भोजनालय में,
    यानों में जाना भी वर्जित।।

था हो चला धर्म-धरणी पर,
    धर्म-धरों का भयमय जीवन।
सदा अनिश्चित लोक सुरक्षा,
    थे भयभीत हुए धर्मी जन।।

शस्त्र उठा संघर्ष किया जब,
    उनको मिली पराजय भारी।
भीषण-छल-बल कूटनीति से,
    विजयी होते अत्याचारी।।

देव-भूमि पर देव-जनों में,
स्वयम् परस्पर फूट पड़ी थी ।
दानव-शासन के कारण ही,
अति अनीति की बेल बढ़ी थी।।

आपस के संघर्षों में ही,
यह मानव समाज उलझा था।
'डालो फूट, बढ़ाओ शासन'
कूटनीति दानव रचता था।।

सम्बन्धी ही उलझा करते,
छोटी सी बातों में फँसकर।
पहुँचा करते न्यायालय में
अपने उन झगड़ों को लेकर।।

न्यायाधीश वही अन्यायी,
दुष्ट-स्वभाव व भष्टाचारी।
आंग्ल-नियम से निर्णय होना,
कैसे बने न्याय सतचारी?

उसी समय सारे जीवों के
उद्धारक, जन-जन के त्राता।
आये वापस मानवता के
मोहन सुन्दर भाग्य-विधाता।।

शिक्षा लेने हेतु गये थे
आंग्ल-देश में आंग्ल नियम का।
करते रहे कठिन व्रत पालन
शुभ यम-नियम तथा संयम का।।

पुनरागमन किया भारत में
तीन वर्ष तक आंग्ल-वास कर।
भारतीय पावन संस्कृति को
दर्शाते मोहन पालन कर।।

लीला कर समाप्त बचपन की,
अब मोहन हैं बढ़ने वाले।
सम्मोहित कर पूर्ण विश्व को,
नव शस्त्रों से लड़ने वाले।।

अब यह विश्व चमत्कृत देखे,
    सत्य अंहिसा का अनुपम बल।
मोहन की अध्यात्म-शक्ति से,
    बलशाली होंगे अब निर्बल।।

विश्व-भुवन में लहरायेगी,
    अब मोहन की विजय-पताका।
कष्ट-हरण होगा भूतल पर,
    निर्बल एवम् दीन जनों का।।

अत्याचार मिटेंगे भू से,
    जग कष्टों से निर्भय होगा।
राम राज्य होगा पृथ्वी पर,
    सदा दुष्टता का क्षय होगा।।

अब विज्ञान न पद की सेवा
    कभी करेगा दानवता की।
प्रकृति सदा सहचरी रहेगी
    मृदल मनोहर मानवता की।।

कृष्ण-घटायें अब संकट की
    अम्बर तल पर छा न सकेंगी।
मोहन के प्रताप के सम्मुख
    निज प्रभाव क्या दिखा सकेंगी?

भाग खड़ी होंगी दानवता,
    संयम सत्य अहिंसा बल से।
वे ही मानव बन जायेंगे,
    जीता विश्व भूवन को छल से।।

प्रथम बार यह जग देखेगा,
    दानव का मानव बन जाना।।
दानव - मृत्यु देखकर देखे,
अब दानवता का मर जाना।।

'दानव के जीवित रहते ही
    मर जाए उसकी दानवता।'
इस अभिनव दर्शन का दर्शन
    करने वाली है मानवता।।

आओ देखें प्रथम किरण हम
    इस अदभुत् दर्शन के रवि की।
ले स्वर्गिक आनन्द महत् हम
    देव-पुष्प के प्रथम सुरभि की।।

दक्षिण अफ़्रीका की भू को पावन-
    निर्मल कर जन-जन के कष्ट हर रहे।
मानवता के त्राण-हेतु मोहन अब
    पश्चिम प्रथम बार प्रस्थन कर रहें।।

ॐ

युगबोध

अष्टम सुमन

प्रस्थान

क्यों देश हमारा परवश?
    क्यों कष्ट नित्य नव मिलता?
भारत के भाग्य-गगन में,
    दिनकर क्यों नहीं निकलता?

क्यों अन्धकार छाया है,
    इस ज्योति स्रोत भारत पर?
जो जग का रहा प्रकाशक,
    क्यों तम छाया है उस पर?

मानव से मानव पीड़ित,
    यह है कैसी मानवता?
मानव पर है आ जाती,
    कैसे निर्दय दानवता?

मानव पशु आज हुआ है,
    पशु से भी नीची श्रेणी।
पायी है ऊँची करके,
    दानवता-गिरि की श्रेणी।।

देवत्व देश का दुर्लभ,
    हो गया लुप्त अब होकर।
हमको सामान्य-सुलभ था,
    अब रोते उसको खोकर।।

देवता कहे जाते थे,
    जिसके तैंतीस कोटि जन।
हम उस भारत के वासी
    खोकर वह निज गौरव धन।।

अब हाथ मल रहे अपना,
    पर क्या है इससे होता?
निर्जीव हुई जब काया,
    फिर सुधा न जीवन देता।

देवत्व भुला कर अपना
    दुवृत्ति पालते हम हैं।
भोगी बन कर हैं छोड़े
    यम-नियम तथा संयम हैं।।

बलहीन हुए हम इससे
    हममे वह तेज नहीं है।
है नहीं आत्म बल हममें
    वह अद्‌भुत ओज नहीं है।।

यह ही कारण, अब दिन-दिन
    हम पतित हुए जाते हैं।
दुष्टों के द्वारा पल-पल,
    हम त्रस्त किये जाते हैं।।

मानव हैं, वह मानवता,
    अब हममें शेष नहीं है।
पूर्वज ऋषियों के तप का,
    हममें अब लेश नहीं है।।

उस भरत तपस्वी जैसा
हममें यदि तप आ जाये।
तो इस अवनी का आतप
कुछ पल में ही धुल जाये।।

हो राम-राज्य निश्चय ही,
फिर से इस भारत-भू पर।
बढ़ सके नहीं दानवता,
यह धर्म-धरा हो सुखकर।।

खिल जाये भारत-उपवन,
फिर से यह लगे महकने।
इसकी शाखों पर कोयल,
अब फिर से लगे चहकने।।

यह सोच रहे थे मोहन
कुछ चौक पड़े ध्वनि सुनकर।
'क्यों सोच रहे हो भैया!'
कह रहे बन्धुवर आकर।।

'कुछ नहीं यहीं पर बैठा,
ऐसे ही सोच रहा था।
अपने ही कुछ कार्यों का,
मैं साधन खोज रहा था।।'

'है स्वयं सुलभ वह तुमको,
जिसको तुम खोज रहे थे।
सन्देश अभी जो आया,
मोहन को दिखा रहे थे।।

मोहन ने उसे पढ़ा जब,
पश्चिम का सद्य निमन्त्रण।
वे चित्र-लिखे से चित्रित,
थे खड़े रह गये कुछ क्षण।।

आश्चर्य, हर्ष दोंनो ही,
कुछ भाव प्रकट हो आये।
धीरे से तब ही भ्राता,
कुछ अधिक निकट हो आये।।

वे बोले - 'यदि इच्छा हो,
तो जाओ तुम हे मोहन!'
'जैसी आज्ञा' – कह स्वीकृति,
दे मौन हुए भारत-धन।।

दक्षिण अफ़्रीका की भू,
सौभाग्य-शालिनी होगी।
वह प्रथम किरण को पाकर,
सुख-शस्य-शालिनी होगी।।

दुर्जेय चरण मोहन के,
अफ़्रीका अब पहुँचेंगे।
भारत के शुभ-दिवाकर,
जग में प्रकाश भर देंगे।।

अब बाल-सूर्य का अनुपम,
नव यौवन विकस रहा था।
अपलक नयनों से जिसको,
यह भूतल निरख रहा है।।

सुन्दर मुख शशि को घेरे
हैं काले-काले बादल-
बनकर हैं केश सुशोभित
कर रहे चन्द्र-मुख-मण्डल।।

हैं नील कमल सी आंखों
पर पलकें शोभित ऐसे।
हों पंक्ति बनाकर घेरे
भंवरे बैठे हों जैसे।।

भुजदण्ड प्रलम्ब सुशोभित,
हैं देवों सी बलशाली।
चौड़ा ललाट है अनुपम,
शोभा दे रहा निराली।।

यह मूर्ति मनोरम अनुपम,
है पूज्य बन्धु के सम्मुख।।
जिसके मुख पर हैं दोनों,
भाव उठ रहे सुख-दुःख।।

कह रहे - 'बन्धु अब जाते
मेरे नयनों के तारे।
परिवार नगर के वासी,
सबके प्राणों के प्यारे।।

हो मञ्जुल मूर्ति मनोहर,
मेरे मन-मंदिर के तुम।
हो पाये नहीं अपावन,
प्रतिमा यह पावन अनुपम।।

प्रिय अम्बु मत्स्य को जैसे
है उसी आश्रित जीवन।
मणिधर सर्पों का रहता
मणि पर ही केन्द्रित ज्यों मन।।

यदि किसी भांति भी उसकी
मणि को कोई हर लेता।
तो तड़प-तड़प कर मणिधर
वह विषधर जीवन देता।।

5

तुम इसी भांति हे मोहन!
मणि हो प्रिय लाल हमारे।
इस मछली के तुम जल हो,
आश्रित हैं प्राण हमारे।।

हे बन्धु! जा रहे, जाओ,
अपना कर्तव्य निभाना।
आदर्श दिव्य भारत के,
निज कर्मों में दिखलाना।।

गम्भीर समान नीर निधि,
भारत जन-जन को प्यारा।
ये शब्द बन्धु को लगते,
जैसे अमृत रस धारा।।

'हे बन्धु आपका मोहन,
बालक है भारतवासी।
जिसके ऋषियों का तप है,
हरता सम्पूर्ण उदासी।।

चरणों की पावन रज के,
अनुपम प्रताप को लेकर।
जाएगा स्नेह, आपका,
आशीष साथ में सुखकर।।

निष्कण्टक यात्रा तेरी,
सुखकर सुखकर कर देंगे।
सागर की इस यात्रा को
आनन्दों से भर देंगे।।

निज पूज्य बन्धु का पावन,
आशीष प्रेममय लेकर।
दृग जल निमग्न थे सबके,
पद-रज मस्तक पर रखकर।।

दक्षिण अफ्रीका जाने
के हेतु चल रहे मोहन।
निज अश्रुपूर्ण नयनों से
हैं देख रहे सारे जन।।

प्रस्तुत वियोग के दुःख से,
नारी का हृद भर आया।
तब अश्रु छलक आने से,
धुँधला सा दृग में छाया।।

आँचल से पोंछा आँसू,
देखा कुछ दृष्टि उठाकर।
फिर भाव नयन में आये,
प्रिय को दुःख कातर पाकर।।

नयनों को नयनो से ही
सन्देश मूक मिलता था।।
यों देख रहे वे दोनों
दृग पलक नहीं हिलता था।।

जाने को उद्यत मोहन,
पर चरण नहीं बढ़ते हैं।
वे वहाँ स्वयम् से ही तो,
यों खड़े-खड़े लड़तें हैं।।

लेकिन यह तो निश्चय है,
    जाना तो उनको है ही।
कातर निर्जीव हुए से,
    पग बढ़े व केवल वे ही।।

था हृदय यहीं पर छूटा,
    चेतना यहीं पर छूटी।
फिर भी बाला कस्तूरी,
    घर में थी लूटी–लूटी।।

आज मोहन देश से हैं चल दिये,
    साथ ले मंगलमयी शुभकामना।
आनन्द यात्रा का उठायें हम सभी,
    जो प्राणियों में भर रही सद्भावना।।

ॐ

युगबोध

नवम सुमन

यात्रा

ज्यों तरुण तेज तट पर बैठा,
    कर धारण नव मानव शरीर।
अपलक नयनों से निरख रहा,
    सागर का निर्मल नील नीर।।

उसके अन्त-स्थल सा ही है,
    सागर का वक्ष-स्थल विशाल।
लहरें बन-बन कर मिट जातीं,
    जैसे स्वप्नों का सुखद जाल।।

जैसे उसके मन मानस में,
    ले रही उछालें हैं उमंग।
वैसे ही सागर के जल में,
    बनती उठती गिरती तरंग।।

यों यत्न हमारा व्यर्थ रहा
ज्यों करें सिंह से द्वन्द मेष।
उपयुक्त प्रथम श्रेणी में अब,
है नहीं मिला आस्थान शेष।।

हे पूज्य! क्षमा-अभिलाषी मैं,
कह कर आगन्तुक हुआ मौन।
मानस-से गहरे सागर से,
तब दृष्टि उठाया, व्यक्ति कौन?

देखा प्रतिनिधि अब्दुल्ला का,
सम्मुख मुख-मण्डल यों मलीन।
जैसे प्रवास में विजित हुए,
पुर लौटा नृप आश्रय-विहीन।।

मोहन की चमकी दन्त-पंक्ति,
जैसे नभ में सुर धनु महान।
हो जाए कहीं दृष्टिगत ज्यों,
मरु में व्याकुल को हरोद्यान।।

जलतें अंगों पर चन्दन ज्यों,
बोले मोहन वाणी सप्रीति।
'चिन्ता मत करो स्वयम् जाकर,
देखूँगा विधि की रीति-नीति।।

कैसे है कोई स्थान नहीं,
जलयान हो गया है अशेष।
सम्भवतः कोई निकल सके,
ईश्वर इच्छा सें विधि-विशेष।।

यह अभी नहीं पा सकता यदि,
करना होगा मुम्बई-वास।
दो-चार दिनों की बात नहीं,
रुकना है पूरा एक मास।।

यह कह कर मोहन चले गये,
मिलने अधिकारी सिन्धु-यान।
छोटे परनाले से मिलने
गंगा के जाने के समान।।

उससे मोहन ने पूछा जब,
वह बोला, हे मानव विभूति।
मोहन, है विद्यमान मेरे
हृदय में पूरी सहानुभूति।।

इतनी तो भीड़ नहीं होती,
पर मोजाम्बिक के राज्यपाल।
जा रहे इसी पर, इसीलिए,
बढ़ गयी भीड़ इतनी विशाल।।

जैसे गिरि शिखरों के स्वामी,
गौरीशंकर के आस-पास।
हिम मण्डित छोटे और बड़े,
बहुतों का है निर्मित-निवास।।

आभास मुझे होता है यों,
भर गयें इसी से सभी स्थान।
सेवा करने का लाभ नहीं,
पा सका इसी से तुच्छ यान।।

'तो फिर क्या मैं अब लौट चलूँ'
जाने की आशा से निराश।
सहयोग नहीं कर पायेंगे,
क्या आप? करूं ऐसा विश्वास।।

ये शब्द सुने मोहन के जब,
हो गया हृदय पर व्रज-पात।
हो गया हृदय टुकड़े-टुकड़े,
सह सके कौन यह विकट घात।।

बोला विनम्र वाणी में वह,
'सम्भव है केवल इस प्रकार।
चल सकते मेरे साथ आप,
प्रिय लगे आपको यदि विचार।।

मेरे प्रकोष्ठ में खाली है,
बस एक सेज ही अप्रयुक्त।
यात्री को देते नहीं उसे,
इसलिए अभी भी शेष मुक्त।।

यदि उचित आप समझें चलना,
    अर्पण कर दूगाँ मैं सघर्ष।
सहयोग आपका करनें में,
    मुझको भी होगा परम हर्ष।।

रोगी को जैसे मिल जाये,
    औषधि उत्तम जो हरे व्याधि।
वैसे मोहन उल्लास-पूर्ण,
    जब दूर हो गयी यह उपाधि।।

बोले - मैं कभी न भूलूँगा,
    उपकार आपका यह महान।
हैं बहुत नहीं इस पृथ्वी पर,
 ऐसे उदार करुणा-निधान।।

जो कृपा आपनें की मुझ पर,
    शत-शत स्वीकृत हो धन्यवाद।
अब है समर्थ दे पाने में,
    ऋतुपति वसन्त अपना सुस्वाद।।

इस वसुधा पर है डाल चुका
    अपना पड़ाव ऋतुपति वसन्त।
आनन्द उमंगों से भर कर
    हैं झूम रहें ये दिग-दिगन्त।।

जैसे वसन्त ने आकर यों,
    कर दिया दूर दुखमूल शीत।
हो कर स्वतन्त्र पट वन्धन से
    अब घूम रहा यह जग अभीत।।

मोहन जाकर अफ्रीका में,
    जन भीषण पीड़ित अनाचार।
अब द्वेष बन्ध से मुक्त करें,
    भर कर जन मन में सद्विचार।।

जब सिन्धु-यान की वाष्प खुली,
    उत्पन्न हुआ कम्पन विशाल।
जैसे संकेत दे रहा हो,
    आ गया कष्ट का अन्तकाल।।

बढ़ रहा यान सागर तल पर,
चीरता नीर को था सगर्व।
ज्यों कुचल-कुचल कर शत्रु दर्प,
बढ़ता सवेग हो मुक्ति पर्व।।

जलयान चीरता बढ़ता था,
सागर का गहरा जल अथाह।
पथ कें कष्टों को तोड़-तोड़
ज्यों वीर बनाता चले राह।।

जो जीव-जन्तु जलचर पथ में
टकरातें जैसे खल-समूह।
वह छिन्न-भिन्न करता उनको
जैसे अर्जुन-सुत चक्रव्यूह।।

अभिमन्यु! हाँ वही यात्री है,
जाता करने को व्यूह-भेद।
क्या विधिवेत्ता केवल वह था?
यह कौन जानता गहन भेद?

समरांगण में वह कूद रहा,
करतल पर लेकर स्वयं प्राण।
अपने परिवार जनों को ही,
देने जाता क्या वीर त्राण?

संघर्ष मार्ग का अनुयायी,
वह बना हुआ है विश्व-हेतु।
जिस पर से पार उतर जाए,
वह है ऐसा ही सुगम-सेतु।।

पर मोहन कृष्ण-बासुरी हैं,
जिससे मोहित संसार एक।
सज्जन-दुर्जन, रिपु-मित्र सभी,
बन्धन में पिछली छोड़ टेक।।

वे चले मुम्बई से पहुँचे,
लामू तट पर विश्राम गाह।
थे निकट यानपति मित्र साथ,
अब तक तेरह दिन सुखद राह।।

जलयान रुका था तट पर जब,
    उतरे मोहन तब भ्रमण-हेतु।
लघु-ग्राम देखने जा पहुँचे,
    वे मानवता के धवल केतु।।

जब डाकगेह पहुँचे मोहन,
    देखा भारत-सुत निरत-कर्म।
साकार बना सा दिखा रहा,
    ज्यों कर्म-योग ही सहज-धर्म।।

मोहन यों मिले हब्सियों से,
    भरकर अन्तस्तल अतुल प्रेम।
ज्यों कोल-किरातों-भीलों से,
    वन राम पूँछते कुशल-क्षेम।।

उनका वह निश्छल रहन-सहन,
    सादा जीवन, ऊँचा विचार।
था समय बीतता उसमें पर,
    आकर्षण भी तो था अपार।।

दे जीवन का सन्देश उन्हें,
    लौटे मोहन जलयान-ओर।
सागर में झंझावात खड़ा,
    लहरें उसकी लेती हिलोर।।

मानो वे दे सन्देश रहीं,
    भावी संघर्षो का ज्वलन्त।
जलयान निकट तक जा जा कर,
    लघु तरणी हट-हट रही हन्त!

जब चलने का संकेत किया,
    जलयान, मित्रकृत तब सप्रीति।
नौका दूसरी लिया क्षण में
    ज्यों परिवर्तित हो युद्ध-नीति।।

कुछ काल के लिए यान रुका,
    देखा जब मोहन रहे छूट।
कर रहा प्रतीक्षा जिसकी जग,
    क्यों उससे नाता सके टूट?

जब यान सवार हुए मोहन,
    चल दिया, करें क्यों अब विलम्ब?
रह गये पथिक कुछ तट पर ही,
    वे खड़े देखते निरावलम्ब।।

जैसे सुकर्म-सदभावों से,
    शोभित अभिनव जन प्रगतिशील।
बढ़ता द्रुत गति चीरता हुआ,
    पथ-कण्टक-जैसे सिन्धु-नील।।

वैसे मोहन बढ़ चले, वहां
    रह गये ग्रसित ज्यों रूढ़िवाद।
ज्यों परम्पराओं में जकड़े,
    रहते पीछे, पाते विषाद।।

जिसमें बढ़ने की अभिलाषा
    उसका सहयोगी जग सदैव।
क्या भला करेगा उन्नति वह
    जो कहे - 'ठीक, जो करे दैव।।

विधि के हाथों की कठपुतली,
    जो कहते ले संकीर्ण दृष्टि।
क्या अधोमुखी घट को भरना,
    कर पायी सम्भव प्रलय-वृष्टि।।

मानो ऐसे ही यात्री थे,
    जो लामू तट पर गये छूट।
जलयान काटता सागर-जल,
    जैसे पथ-कण्टक रहे टूट।।

लामू से पहुँचे मुम्बासा,
    उसके भी तट को कर पवित्र।
फिर जंजीबार पड़ा पथ में,
    जो हरे देश का हरा चित्र।।

मोजाम्बिक जाने से पहले,
    था अष्ट दिवस का अन्तराल।
लेकर गृह थे वे ठहर गये,
    देखा वह सुन्दर पुर विशाल।।

यों हरे-भरे थे खड़े हुए,
    तरुवर भारी शाखा प्रलम्ब।
लहराते पवन वेग से यों
    स्वागत आतुर ज्यों लख विलम्ब।।

थे झुके हुए वे वृक्ष सभी,
    लादे थे फल का मधुर भार।
जैसे कर-कमलों में फल ले,
    स्वागत करते मन-सुख अपार।।

मोहन जब भ्रमण कर रहे हों,
    गिरते भू पर फल छोड़ डाल।
मानो हो नम्र वृक्ष कहते,
    स्वीकारो भू के दिव्य लाल।।

झूक-झुक कर टहनी चूम रही,
    जैसे मस्तक एवम् कपोल।
ध्वनि जो पत्तों से होती है,
    ज्यों कुशल पूँछते मधुर बोल।।

उपवन में मोहन घूम रहे,
    वैसे ही पुष्पों का पराग।
मधु गन्ध चतुर्दिक फैल रहा,
    जैसे मोहन का मुक्ति-राग।।

थे मधुर-मधुर स्वर में गाते,
    मधुकर जैसे स्वागतम्-गान।
पंचम स्वर वाली कुहुक रही,
    कहती-'स्वागत-स्वागत महान।।'

चम्पा, गुलाब, गेंदा, बेला,
    जो पुष्प रहे थे मधु विखेर।
मकरन्द-गन्ध के वाणों से,
    वे खेल रहे जन मन अहेर।।

निज मधुवासों की लघुता से
    कुछ का मुख-मण्डल लाल-लाल।
लज्ञा का नीर झलकता था
    बन ओस-मणिक उपवन विशाल।।

मोहन जिस ओर पहुँचते थे,
हर मुक्तामणि में रुचिर रूप।
मानो हर सुमन कह रहा हो,
'कण-कण में तेरा ही स्वरूप'।।

कुछ शंकित चिन्तित भीत हुए,
उनका कोमल मुख वर्ण पीत।
कुछ नील वर्ण वाले भी थे,
जो सिहरे, दौड़ी लहर शीत।।

सप्ताह एक का समय, नगर
मोहन ने देखा घूम-घूम।
जिस ओर चले, कर रहा पवन,
स्वागत आनन को चूम-चूम।।

जलयान उन्हें ले दौड़ चला,
तट रहा ठगा जल-पथ निहार।
मोजाम्बिक तट को सौंप दिया,
जैसे छीना धन दुर्निवार।।

लेकिन छीना धन क्यों टिकता,
मोहन पहुँचे नेटाल-देश।
थे जिसके वासी देख रहे,
आ रहे यान को निर्निमेष।।

यात्रा समाप्त होते-होते,
प्रस्थान कर गया ऋतु बसन्त।
अफ्रीका में पग रखते ही,
ज्यों शान्ति-काल का हुआ अन्त।।

ज्यों पूर्व सूचना देता सा,
बढ़ता जाता था विकट ग्रीष्म।
वे उसे झेलकर लड़ने का,
थे किये हुए संकल्प-भीष्म।।

मोहन महान सुभागमन, मिल करें स्वागत हम सभी।
थी भीड़ तट पर विपुल दर्शन-हेतु, पाएंगे अभी।।
बस एक आशा कष्ट पाते दिवस एवम् रात्रि भी।
अब उदित हो मोहन मिटाएँ यह घनी रजनी कभी।।

ॐ

युगबोध

दशम सुमन

अभ्यागत

उस नेटाल-सिन्धु के तट पर
    लगी हुई थी अनुपम भीड़।
देख रहे थे सिन्धु-यान को
    जननी, ज्यों विहंग-शिशु नीड़।।

एक बने दृग युगल बहुत से,
    देख रहे थे पथ टक एक।
सहसा हर्ष-स्वरों में 'मोहन'
    चीख पड़े कह कण्ठ अनेक।।

हिचकोले लेता आ पहुँचा,
    तट पर व्यग्र-प्रतीक्षित यान।
जो दृग युगलों की अभिलाषा,
 उतरा तट पर कर्म-विधान।।

बाँध लिया दो भुज-पाशों ने,
    जैसे मूर्ति-स्नेह-साकार।
चार दृगों से बह निकली तब,
    अतुल प्रेम की अनुपम धार।।

पलकें वहाँ सभी भीगी थीं,
    जैसे मणिक-बिन्दु-सी ओस-
कमल किये था धारण, किसको
    मिला प्रेम से कब परितोष?

कितना काल व्यतीत हो गया,
    इसका नहीं किसी को भान।
प्रेम-सिन्धु में थे निमग्न सब,
    कैसा समय-चक्र अनुमान?

एक व्यक्ति बोला सकुचाते -
    'घर को भी चलना है तात!
है अनन्त, क्या कभी अन्त को
    पहुँच सकेगी स्नेहिल बात?

उसी स्नेह-सरिता में डूबे,
    जन ने घर को किया प्रयाण।
कण-कण झूम उठा धरणी का,
    आशा से पायेंगे त्राण।।

निज पद-रज से आज कर रहे,
    पावन अब्दुल्ला का गेह।
हर्ष-विभोर सभी गृह-वासी,
    आये हैं मोहन दुर्जेय।।

मोहन जिसके अतिथि आज हैं,
    उच्च-मुकुट भारत के शीश।
भारतीय नेटाल-वासियों
    में अनुपम प्रतिभा के ईश।।

भारतीय व्यापारी जितने,
    सबमें गुरु के आप समान।
ग्रह उपग्रह सम अन्य, सभी के
    दिनकर मोहन वीर महान।।

बढ़ा-चढ़ा था अब्दुल्ला का,
    सर्वाधिक विस्तृत व्यापार।
भारत की वाणिज्य शक्ति का,
    परिचय पाता था संसार।।

भारत का प्रताप पहुँचा था,
    मोहन बना दिखाने राह।
पीछे नहीं रहे अब्दुल्ला,
    बनकर अभिनव भामाशाह।।

पराधीनता की वेणी के,
    कटनें पर जैसा उल्लास।
या पिंजर से मुक्त हो चुके,
    पक्षी का आनन्द-विकास।।

ज्यों प्रताप को मिल जाने पर,
    वापस उनका प्रिय चित्तौड़।
जिसके लिए कर चुके अनुपम,
    आजीवन वे श्रम जी-तोड़।।

औरंगजेबी अतिचारों से,
    पीड़ित ज्यों बांका शिववीर।
जिस दिन श्वांस लिया था उसने,
    मुक्त राज्य का मुक्त समीर।।

जैसे वापस पा जाने पर,
    अपनी सीता को श्रीराम।
ज्यों आनन्द अवधपुर-वासी,
    पायें, आये शोभा-धाम।।

जैसे देख चन्द्र शीतल को,
    बढ़ता है वियोग का ताप।
प्रिय को पाकर ज्यों प्रेमी के,
    आनन्दों की होगी माप।।

इसी तरह नव भामाशाही,
    सम्पत्ति पर अनुकूल कुबेर।
वैभव के इस विपुल कोश का,
    है उपयोग, अधिक क्या देर?

आँग्ल-ज्ञान की शिक्षा लेकर,
    शिक्षित नहीं हुआ था वीर।
लाभ नहीं इससे कोई भी,
    समझा था बन्धन-जंजीर।।

अन्यायी शिक्षा के रंग में,
    रंग कर विक्रय कर दे मान।
सहन नहीं कर सकता था वह,
    भारत का सुत प्रतिभावान।।

तो क्या मोहन की वह शिक्षा,
    अनुचित और रही थी व्यर्थ?
आंग्ल-ज्ञान का अध्ययन करना,
    विष के फल-सा रहा अनर्थ?

मोहन को लड़ना था आगे,
    अतः ज्ञान उनको अनिवार्य।
आंग्ल-ज्ञान के बिना नहीं था,
    सरल कभी भी ऐसा कार्य।।

पा सामान्य ज्ञान विषयों का,
शिक्षा लेकर वे दश वर्ष।
आंग्ल-विधानो के अध्ययन में,
तीन वर्ष तक लगे सहर्ष।।

डाल रहा जन साधारण पर,
आंग्ल-ज्ञान यह कुटिल प्रभाव।
छोड़ रहे जन निर्मल संस्कृति,
फैल रहा भीषण दुर्भाव।।

वे अभाव में ही शिक्षा के,
उन शिक्षित से कहीं महान।
बढ़ा-बढ़ा पर अब्दुल्ला का,
था अनुभव से संचित ज्ञान।।

आंग्ल देश की भाषा से भी,
नहीं पूर्ण वे थे अनभिज्ञ।
जितना था उपयोगी उनको,
रखते थे वे ज्ञान सुविज्ञ।।

इसी ज्ञान से कर लेते थे,
यूरोपी जन से व्यापार।
तथा आंग्ल-वासी लोगों से,
चलता था उनका व्यवहार।।

धर्मवीर थे अब्दुल्ला भी,
एक सन्त-से एक गृहस्थ।
धर्म-पुस्तकों की रचनायें
थी पर्याप्त उन्हें कण्ठस्थ।।

विद्युताग्र दो मिल जाने पर
जैसे विद्युत-तीव्र-प्रवाह।
यान दौड़ते अधिक वेग से
पा निर्बाध पथों पर राह।।

वैसे ही मोहन को पाकर,
चर्चा चलती थी अब धर्म।
अभिनव कर्म-ज्ञान से भूषित,
स्वयम् कर रहा अनुपम कर्म।।

मोहन बैठे निरख रहे थे,
सन्ध्या की मधुमय मृदु कान्ति।
सुषमा रुचिर मनोहर सुन्दर,
देती थी मानस को शान्ति।।

लौट रही थी अस्त हो रहे,
दिनकर की किरणें हो क्लान्त।
स्वर्णिम आभा विखर रही थी,
वातावरण बना था शान्त।।

निर्मल नील गगन फैला था,
सीमा परम परम विस्तार।
पश्चिम दिशा क्षितिज की शोभा,
शब्द बन्धनों के थी पार।।

ताम्र, अरुण, रक्तिम, नारंगी,
पीत बैगनी से अभिराम।
सघन विरल थे नील वर्ण भी,
बना रहे नभ शोभा-धाम।।

नयनों को जो बांध रही थी,
चुम्बक की आकर्षण-रेख।
शक्ति-क्षेत्र में नयन युगल थे,
वाध्य रहे थे उसको देख।।

छिटकी नभ में अरुण-कान्ति थी,
उसकी सुषमा का उपमान।
बस केवल उपमेय स्वयम् ही,
नहीं प्रकृति का अन्य विधान।।

मानों रंगों का सागर है,
जिसका है विस्तार अनन्त।
लहरें जिसकी उठ-उठ, गिर-गिर,
दृश्य मनोरम बना दिगन्त।।

फैल रही थी विपुल ऊर्मियां,
ज्यों निर्मल जल में उक्षेप।
चित्रकार या लिये तूलिका,
नव वर्णों का करता लेप।।

निर्मल नील गगन में उड़ते,
लौट रहे खग-कुल के झुण्ड।
बोल रहे हर्षित कुल-कुल से,
जीवन तृप्त पिया पा कुण्ड।।

भांति-भांति के, जाति-जाति के,
उड़ते पक्षी रंग-बिरंग।
सेन समेत गगन में पहुँचा,
अंग-अंग में व्याप्त अनंग।।

रवि की अन्तिम रक्तिम किरणें,
तरु शिखरों पर करतीं खेल।
बने मनोरम रुचिर भवन पर,
आभा छिटकी हुई अमेल।।

रक्त-वर्ण दिनकर दिखता था,
जो छिपने को था तैयार।
अल्प दूर भवनों के पीछे,
किया किसी ने जैसे वार।।

और उसी से होकर क्रोधित
मुख-मण्डल का उसका लाल।
चला जा रहा था लड़ने को
उससे, जो हरता तम-जाल।।

कूद पड़ा वह एक भवन से,
सबसे ऊँची जो मुण्डेर।
छायी हुयी अरुणिमा अब तक,
क्रोधित रवि जो गया विखेर।।

चपलाखेटक भाग रहा ज्यों,
पीछा करने में तल्लीन।
तीव्र वेग से दौड़ रहा सा,
वीर दिवाकर हुआ विलीन।।

देख रहे थे सन्ध्या सुषमा,
कस्तूरी का अनुपम स्नेह।
नयनों के सम्मुख छाया था,
ज्यों चलचित्रों में धर देह।।

मधुर प्रणय के मधुमय क्षण जो,
कस्तूरी-सह हुए व्यतीत।
दृष्टि-पटल पर धूम रहा था,
वर्तमान-सा बना अतीत।।

मधुर क्षणों की स्मृति में खोये,
अधिकृत जिसको किये अनंग।
जैसे हो रंगीन स्वप्न सब,
जाग्रत होकर खोया रंग।।

कोमल कर लेकर कर में जब,
मधुवन में कर रहे विहार।
कर में ही सिकुड़ा-सिमटा सा,
लगता था सारा संहार।।

इसकी स्मृति से हुई दशा थी,
वैभव खो कुबेर ज्यों रंक।
प्रकृति अरुणिमा अब लगती थी,
हृदय बह चला नभ के अंक।।

टुकड़े-टुकड़े हो जाने से,
फैल गया है इतना रक्त।
सजल नयन से फिर देखा तो,
रंग अधर-द्वय का था रक्त।।

दो नयनों से निकल पड़ी तब,
स्नेहिल गंगा-यमुना-धार।
डूब रहे थे गहन सिन्धु में,
उमड़ पड़ा जो बनकर प्यार।।

मन-मानस में घुमड़ रही थी,
कस्तूरी की स्नेह-सुगन्ध।
मन्द, मन्दतर नहीं, मन्दतम,
तुलना में थी विश्व-सुगन्ध।।

मृदु कर के स्पर्शो की तुलना,
नहीं मलय-गिरि का उपहार।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन क्या,
जो आनन्द प्रिया के प्यार?

लेकिन अब बन तीक्ष्ण चुभ रही,
उसकी स्नेहिल वह स्मृति शूल।
प्रकृति निर्दयी ताप दे रही,
जायें कैसे इसको भूल।।

गीली पलकें स्नेह सलिल से,
बढ़ता जाता उर-अनुताप।
ज्यों-ज्यों दृष्टि-पटल पर आता,
उष्ण अधर-द्वय का मृदु ताप।।

जब अधरामृत पान कर रहे,
किसी अमिय से उत्तम, मिष्ट।
आज हुआ कटु वही अधिकतम,
प्राप्त न जब हो सकता इष्ट।।

जो कोमल गुलाब के जैसे,
मृदु चुम्बन ले रहे कपोल।
और सुने जब मधुर कण्ठ से,
'प्रिय' यह कितने मीठे बोल!

आज वही व्याकुल मोहन को,
चुभता तीक्ष्ण नुकीला तीर।
क्यों न चुभे? वह अमर प्यार में,
एक प्राण दो बने शरीर।।

विरह ताप से व्याकुल होकर,
धैर्य छोड़ बैठे हैं धीर।
सदा कर्म की ज्योति जहाँ पर,
आज झलकता उनमें नीर।।

जिन नयनों सें सदा फूटता,
आशा का ही पुञ्ज-प्रकाश।
टूट रहा वह, करना जिसको,
जग के दुर्भावों का नाश।।

कस्तूरी के आलिंगन में,
बंधे कल्पना-प्राप्त अतीत।
कुछ सुख, कुछ दुख मिश्रित होकर,
तीव्र हो रहा समय व्यतीत।।

छोड़ दिये फिर से दो मोती,
    मोहन ने लेकर निःश्वास।
नहीं गगन में भानु कहीं था,
    अनुगामी बन गया प्रकाश।।

विकल वेदना लगी फूटने,
    किन्तु कण्ठ तो था अवरुद्ध।
स्नेह-सलिल-नम नयन-हृदय थे,
    वाणी भी हो गयी विरुद्ध।।

लेकिन विरह वेदना उनके,
    मानस से निस्स्रत निर्बाध।
वाणी निकल नहीं पाती थी,
    रुद्ध कण्ठ से कभी अबाध।।

घूम रहा था सम्मुख उनके,
    कस्तूरी का मोहक रूप।
सदा स्नेहमय सरल सुकोमल,
    सुन्दर निर्मल प्रिया स्वरूप।।

और प्रिया का मुख-मण्डल वह,
    सन्ध्या-बाला का मुख भानु।
देता रहा प्रकाश मृदुल जो,
    आज बना है ज्वाल-कृशानु।।

और लटकती थीं दो वेणी,
    ज्यों कमनीय कामना-मूर्ति।
आज बनी नागिन प्रतिमा सी,
    जैसे डसती हरती स्फूर्ति।।

नेत्र कमल की पंखुड़ियों से,
    उज्ज्वल विद्युत-दीप प्रकाश।
धवल चन्द्रिका प्रस्फुट होती,
    शरद-चन्द्रिका-सदृश-विकास।।

पृष्ठ भाग जो कृष्ण, सुशोभित
    उस प्रकाश पुञ्ज के मध्य।
या कि श्वेत अरविन्द-मध्य में
    मधुकर हो पराग आबद्ध।।

युगल पंक्ति दन्तों की उज्ज्वल,
पावस घन दो-दो सुर-चाप।
सम्मुख अनुपम करके जिसको,
निःस्रत होने लगा विलाप।।

और कण्ठ बस कण्ठ-सदृश ही,
उपमा नहीं कहीं अन्यत्र।
जो आनन्द बिखेरा करता,
करता अब विषाद एकत्र।।

भुज भुजंग से आज लग रहे,
कभी लिपटते लता-समान।
वही शोक हैं आज बढ़ाते,
कुण्डल, जो कर्णों का मान।।

ज्यों किसलय-गुलाब सुमनों से,
विरचित मञ्जुल मधुमय देह।
ज्यों उसको सम्बोधित करके,
निकल रहा है दुःखमय स्नेह।।

'स्नेह पयोधर मम मानस की,
मञ्जुल तथा मनोरम-मूर्ति।
छोड़ मुझे लौटा दो मेरी,
नित्य-नयी वह कर्म स्फूर्ति।।

धारण कर स्वयमेव देह में,
कस्तूरी की अनुपम गन्ध।
हरिण भटकता फिरता जैसे,
स्वयम् ओर से होकर अन्ध।।

लेकिन मैं अपनी कस्तूरी,
छोड़ भाग आया हूँ दूर।
इसीलिए तो भोग रहा हूँ,
विकल, वेदना यह भरपूर।।

कस्तूरी कर क्षमा मुझे तू,
इतने दिन को देती छोड़।
सहन नहीं करने की क्षमता,
मुझमें बढ़ती हुई मरोड़।।

कर्म-मार्ग में यदि आयेगा,
अवरोधक बन तेरा प्यार।
परम पूज्य पावन फिर इसको,
कह पायेगा क्यों संसार?'

विरह-वेदना में निमग्न था,
विकट स्नेह ही जब साकार।
अब्दुल्ला अनुरोध कर रहे
आकर - 'भोजन है तैयार।।

आज आपका मन-मानस क्यों
कुछ प्रतीत होता है खिन्न?'
क्या उत्तर दे मोहन उनको!
पूँछ रहा है हृदय-अभिन्न।।

'कुछ ऐसे ही' – कह साथ लगे चलने मोहन,
स्नेह सिन्धु ले रहा हिलोरे मन-मानस में।
भोजन पर बैठे पर मन तो कहीं और था,
मादक सुरभि संचरित होती थी नस-नस में।।

रवि की नयी किरण के साथ किरण फूटेगी,
मोहन के अन्यायों से संघर्षण की भी।
जीवनदायी रश्मियाँ ज्ञान जग को देगीं,
मोहन के नव सम्मोहन आकर्षण की भी।।

ॐ

युगबोध

एकादश सुमन

स्नेह

''अन्तस्थल वीणा में पीड़ा भर देती हो,
मानस की तन्त्री को झंकृत कर देती हो।
स्नेह की लता हो, पर स्वामी की प्रेयसि तुम,
वाणी-मृदु-शर से हृद-विक्षत कर देती हो।

देखा तुम्हें तो सौम्य में ही खो गये,
हम मधुर वीणा-सम स्वरों से सो गये,
और अनुपम स्नेह की मधुमय नजर जब,
मिली तो 'स्वामी' तुम्हारे हो गये।

दे दिया है तार जीवन का तुम्हें,
दे दिया संसार है मन का तुम्हें।
अब चमक दो या कि तारों को बुझा,
दे दिया अधिकार शासन का तुम्हे।

सत्य होगें, देखते जो हम स्वपन,
स्नेह जीवन, स्नेह ही अपना वतन,
भावना के लोक में हम तुम निवासी,
तुम्हीं जीवन के हमारे एक धन।।

बहुत अब तिथियाँ पुरानी हो गयीं,
स्नेह की आँखें कहानी हो गयीं,
देखने को तुम्हें प्यासें ही रहे,
और आँखें स्वयम् पानी हो गयी।

चिरमुक्त दुःख से, वेदना सहते रहे,
'अधिकार है सुख पर' यही कहते रहे,
मिलता न क्यों, आनन्द का अमृत-कलश,
हम स्नेह के संसार में रहते रहे।

देख, यह बरसात पहली हो रही,
या कि तुमसे बात पहली हो रही,
स्नेह की पहली नज़र मुझको मिली,
या कि 'स्वामी' बात पहली हो रही।

जिसे अपना कह दिया वो ही बेगाना हो गया,
जो लगा हमको भला, वो ही सयाना हो गया,
जो सितारा शरद-पूनम की तरह हमको लगा,
वही 'स्वामी' को अमावस का बहाना हो गया।

प्रेम सभी करते हैं जग से,
कोई इससे कोई उससे,
प्रेम सभी को हो जाता है,
इनसे नहीं तो स्वामी उनसे।

प्रेम किया अपने मित्रों से,
सद्विचार मानव अभिनव से,
जहाँ ह्रदय ने अनुमति दे दी,
प्रेम किया है तन मन धन से।

प्रेम किया है सर्वेश्वर से,
सत्संगी मानव जन वर से,
नहीं भला जो कुछ ¯कर सकता,
नहीं प्रेम कर उस बल धर से।

सबने जाना प्रेम तत्व को,
हमने प्रेम धर्म है माना।।
पावन भाव इसे माना है,
स्वामी शरण प्रेम सत जाना।।

ह्रदय में सम्मान मेरे,
कर्म के सौन्दर्य का है।
भीख में मांगा नही है,
आज तक अपनत्व मैने।।

स्नेह वह स्वीकार मुझको,
मान की रक्षा करे जो।
वह नही प्रिय जो कृपा कर,
प्यार को भी भीख सा दे।।

जो मुझे अपना सकेगा,
मान की रक्षा करेगा।
सिर्फ उसके ही चरण पर,
मान का बलिदान होगा।।

चरण कमलो में तुम्हारे,
स्वयम् को अर्पित करूँगा।
और मैं बलिदान का,
अधिकार भिक्षा माँग लूँगा।।

स्वयम् तुमने ही कहा था,
हृदय में हो श्वांस में हो।
भाग्य की निर्बल लकीरों
पर नहीं विश्वास मेरा।।

यदि नहीं यह सत्य है तो,
मुक्त करता हूँ तुम्हे मैं।
भाव बन्धन से स्वयम् के,
प्रेयसी, अब खुश रहो तुम।।

यह न सोचो प्यार मेरा,
क्षणिक या केवल प्रदर्शन।
किन्तु मेरा भी अहम् है,
मान या अपमान भी है।।

स्नेह तो देना पड़ेगा,
स्वयम् को भी कर समर्पित।
मान खोकर प्रेम की,
भिक्षा नहीं मैं ले सकूँगा।।

चाहता अधिकार सेवा का,
समर्पण त्याग का मैं।
स्वयम् को बलिदान कर भी,
स्नेह की रक्षा करूँगा।।

यदि नहीं स्वीकार करते,
तुम हमारी भावनायें।
स्वत्व खोकर मैं तुम्हारा,
प्रेम कब स्वीकार करता।।

यदि न कहते तुम समय
के साथ प्रेम प्रगाढ़ होगा।
स्नेह की मधु-भावना को
मैं नहीं करता सपर्पित।।

स्नेहिल पावन रक्षा-बन्धन,
यह मधु-भावन रक्षा - बन्धन,
है दिव्य सूत्र रक्षा - बन्धन,
लाया सावन रक्षा-बन्धन।

ममता की स्नेहिल आत्म शक्ति,
हो गयी समन्वित सूत्रों में
प्रिय की रक्षा-कामना-भूत
साकार पर्व रक्षा-बन्धन।

प्रेयसी शची इन्द्राणी ने,
प्रियतम देवेश सुरक्षा हित,
पति के हाथों पर बांधा था,
पहला-पहला रक्षा बन्धन।

रण - विजय यात्रा पर निकले,
वीरों के हाथों पर बांधा,
विद्वान् तपस्वी साधक ने,
दृढ़ कवच बना रक्षा-बन्धन।

फिर कर्मवती ने बन्धु बना,
मुगलेश हुमायुँ को भेजा,
स्नेहिल राखी रेशम धागा,
वह बना अमर रक्षा-बन्धन।

यह प्रेम भावना का प्रतीक,
मधु सुधा स्नेह की सीमा-सा,
'स्वामी' जीवन-रक्षक धागा,
बन गया मंजु रक्षा-बन्धन।

पहले ही देखा था मैंने जब मधुवन में,
लगता था मधु से ही मधुवन मधुवासित है,
सोचा था मधुवन ही सत्य नाम इसका है,
मधु के मकरन्दों से वासित परिभाषित है।

मधुकर की गुनगुन थी, कोयल की कुहकन थी,
लेकिन शरमाती-सी पंचम स्वर वाली थी,
फूली हर डाली थी अरुणायी छायी थी,
शायद वह मधुवन के लज्जा की लाली थी।

मधुवन में जाने को जैसे ही बढ़ता मैं,
फूलों की डाली के काँटे चुभ जाते थे,
लेकिन उन शूलों का फूलों से आना क्या?
लगता था नयनों के तरकश से आते थे।

मोती से वर्षा जल-कण थे जो फूलों पर,
उसमें उस तन की यों परछाई पड़ती थी,
गोकुल का 'स्वामी' वह झिलमिल-सा यमुना जल,
चन्दा संग राधा की तनझाईं पड़ती थी।

तेरे इस जीवन की राहों पर कदमों में
फिसलन जब होगी तों बांहों में भर लूंगा।
जब भी पग बहकेंगे, सोने के शूलों में
फूलों की राहों पर, तुमको मैं खीचूंगा।

अनुपम तुम मेरे मन-मन्दिर की मूरत हो,
कैसे सह पाऊंगा, प्रतिमा यह कलुषित हो।
चम चम चमको तुम चन्दा से, सूरज से,
बढ़कर, मधुभावों के भूषण से भूषित हों।

जग से कह दूँ मैं ''ये सीमा है सांसों की,
नयनों के तारे हैं, प्राणों से प्यारे है।
इनकी ही इच्छा पर जीवन की गतिविधि है,
इनके मधुभावों पर अर्पित सुख सारें हैं।।

तन मन से अर्पित हो देखूंगा मुख छवि को-
पलकें संकेतों से इंगित क्या करती हैं?
इनके आदेशों पर जीवन में गति होगी,
संवेदन जो कुछ मम मानस में भरती हैं।।

यदि तेरे मन में दुःख होगा आघातों से,
कहना क्या? अपने को अपित मैं कर दूँगा।
तेरे मन मानस को 'स्वामी' मधु भावों की,
कविता से सहला आनन्दों से भर दूँगा।।

चित्र जो कल्पना में बनाता रहा,
रंग पावन सुकोमल बनी भावना,
स्नेह इस मोड़ पर मंजु सीमा बनी,
प्रीति ही अर्चना, वन्दना, रंजना।

बांह में तुम हमारे न जो आज हो,
गम नहीं, दिल में मूरत तुम्हारी बसी,
इसकी भी है खुशी, हमको सन्तोष है,
जो हमारे लिए आ रही है हँसी।

मेरी आहों से जिनकी खुशी है बनी,
गम से सूरत कभी उनकी बिगड़े नहीं,
सिर्फ आँसू से सींचा है मैने जिसे,
मेरे भगवान्! चमन उनका उजड़े नहीं।

शोख तकदीर की उस कड़ी आंच से,
फूल से होठ उनके न मुरझा सकें,
चोट खाये हुए दिल के अरमान हैं,
खुश रहें वो, फ़कत गम ही हम पा सकें।

जिनकी राहों में पलकें बिछायीं कभी,
मंजु कदमों में कांटे न डालेंगे हम,
जिनकों दिल में बसाया था हमने कभी,
कुछ भी हो, उनको हम दे न पायेंगे गम।

वे न चाहें हमें ये है उनकी खुशी,
उनकी मर्जी है अपना न अधिकार है,
किन्तु आवाज मेरी चिता से उठी,
चाह 'स्वामी शरण' का अमर प्यार है।

आपको प्यार करना फ़कत पाप था,
जिन्दगी में हमारी यही शाप था,
सिर्फ इतनी सच्चाई पता थी नहीं,
मानते थे मसीहा, वही व्याध था।

दर्द दिल का न कहते तो जीते नहीं,
जिन्दगी को जहर सा यों पीते नहीं,
तुमको अपना न यदि मान लेते कभी,
प्यार के पात्र मेरे थे रीते नहीं।

और इतना भी कम तो नहीं जी लिया,
अश्क भी पी लिये, होठ भी सी लिया,
आप ही खुश रहो बस दुआ है यही,
प्यार 'स्वामी' न पाया, जहर पी लिया।

भावना से न परिचय करा मैं सका,
खो दिया शीघ्र तुमको न पा मैं सका,
था अभी तो न परिचय हुआ, न अभी,
सम्पदा स्नेह की सामने ला सका।

प्रात होने से पहले निशा हो गयी,
पग उठा न सके मंजिलें खो गयीं,
स्वप्न को भी सही रूप दे कब सके?
किन्तु पहले प्रिये नींद ही सो गयी।

दर्द तुमने दिया जो दवा क्या करूँ?
अब तुम्हीं यह बता दो दुआ क्या करूँ?
रुख तुम्हारा जो बदला हुआ आज है,
जो हुआ पूर्व 'स्वामी' बता क्या करूँ?

लोग कहते हैं जल इन्कलाबी शमाँ,
बाँटती अन्त में रोशनी कुछ नयी,
आग ऐसी लगी जल गये सब सपन,
किन्तु जीवन की राहें न रोशन हुई।

ख्वाब ही देखते रह गये हम मगर,
इस धरा पर महल कुछ बनाया नहीं,
सिर्फ कागज रंगे हैं, लकीरें खिंचीं,
नींव भी आज तक डाल पाया नहीं।

स्वप्न देखा कि उस नील आकाश तक,
प्यार का हम बनायेंगे ऊँचा महल,
फिर लिखेंगे सितारों के अक्षर बना,
जगमगाता हुआ नाम तेरा बिमल!

कल्पना के बनाये महल ढह गये,
खण्डहर हो गये, देखते रह गये,
बाढ़ जुल्मों सितम की कहर ढा गयी,
एक पल में शहर के शहर बह गये।

वह तमन्ना लुटी और आशा मिटी,
इस जहाँ में अंधेरा-अंधेरा हुआ,
राह 'स्वामी शरण' देखते रह गये,
सूर्य सोया रहा, कब सबेरा हुआ?

सिर्फ इतना सहारा बहुत है मुझे,
प्यार मेरा सदा मुस्कराता रहे।
देखकर वो मुझे चाहे मुँह फेर ले,
किन्तु अपनी वो महफिल सजाता रहे।

देखकर यों विहँसता उसे सामने,
मन-हृदय को बहुत शान्ति मिल जायेगी।
दूर से देखकर भी चहकते उसे,
मेरे मन की कली फूल बन जायेगी।

लोग कहते हैं-''सद्प्रेम मरता नहीं''
मेरे दिल में यहीं एक विश्वास है।
उनकी इस बेरुखाई के पीछे छिपा,
झाँकता स्नेह का साफ आभास है।

नित्य कहते है वो-''हम मिलेंगे नहीं''
किस तरह इस 'नहीं' को 'न' ही मान लूँ।
देखकर व्यञ्जना स्नेह मुस्कान की,
कोई कहता हैं यह प्रेम पहचान लूँ।

मेरे अपने हृदय के निजी दर्द को,
एक दिन मानना ही पड़ेगा तुम्हें।
इस तरह खुद को कब तक छलोगी प्रिये,
प्यार पहचानना ही पड़ेगा तुम्हें।

एक विश्वास लेकर जिये जा रहा,
आपको याद मेरी कभी आयेगी।
देख लूँ धैर्य 'स्वामी शरण' स्नेह का,
निष्ठुराई तुम्हारी पिघल जायेगी।

तेरे दिल में हमारी जगह न बनी,
मेरे दिल पर तुम्हारा हि अधिकार है।
एक ही बात कहनी है केवल मुझे,
तुमसे मुझको बहुत प्यार है, प्यार है।

लोक विश्रुत प्रिये, प्यार का धर्म है,
बात इतनी निभानी सदा ही हमें।
प्रेमवेदी सुसंकल्प हमने लिये,
है निभाना उन्हें प्राण देकर हमें।

घर तुम्हारा जहां में कहीं अब नहीं,
एक मेरा ह्रदय मंजु अवास है,
मै भला यदि नहीं तो बुरा ही सही,
सिर्फ तेरा हुआ, बात यह खास है।

पूज्य जननी तुम्हें जन्म जिसने दिया,
आज माँ के मृदुल स्नेह का वास्ता,
प्यार मेरे कसम प्यार की है तुम्हें,
दुरियों का सही यह नहीं रास्ता।

प्यार का ही सहारा अगर दे सको
विश्व की हर खुशी खींच लाऊँगा मैं,
आत्म विश्वास स्वामी अभी शेष है,
कर्म वह क्या, जिसे कर न पाऊँगा मैं।

मेरे दिल के लहू की लिये लालिमा,
आपकी मांग में मेरा सिन्दूर है।
लोग जागीर मेरी बतायें तुम्हें,
तुम कही भी राहो, लोग मजबूर हैं।

है प्रणय में मधुरतम कलह हो प्रिये,
प्यार ही क्या वह जिसमें न तकरार हो,
होंगे शिकवे शिकायत भी अपनों से ही,
गैर से इस तरह का न व्यवहार हो।।

जो हमारा है उससे लड़ेगे सदा,
प्यार से फिर तुम्हें ही खिलायेंगे हम,
मैने तन दे दिया, अपना मन दे दिया,
सब तुम्हें सौंप कर अब उठायेंगे गम।।

मैं यहां हूं, मुझे प्राप्त सब कुछ हुआ,
पास तेरे मगर है हमारा ह्रदय।
आज मंजिल सुनहरी खड़ी सामने,
किन्तु फीकी चमक, तुम नहीं इस समय।

हर प्रगति की प्रथम सूचना हो तुम्हें,
प्यार मेरे, तुम्हारा ही अधिकार है।
अब अतिथि की तरह ही चली आ प्रिये,
मानता हूँ, न ही तू खतावार है।

तुमको बाहों में पाकर समझना कठिन,
जान पाया तुम्हें देर तब हो चुकी।
ऐ मेरी जिन्दगी, खून सौ माफ अब,
कर वफा, बेवफाई बहुत हो चुकी।

जुल्म इतना कर एक लाचार पर,
दिल तुम्हें सौंप कर आज मजबूर हूँ।
प्यार मेरे, तुम्हारी कसम, सच कहूँ
पास हूं तेरे मै, अपने से दूर हूँ।

इस शहर से उचट सा गया मेरा मन,
अब बहुत दूर इससे निकल जाऊँगा।
यदि नहिं तुम मिली तो तुम्हारी कसम,
लौट इस अंजुमन में न फिर आँऊगा ।

मेरा भावुक ह्रदय कितना कमजोर है,
जानती हो, नही बोझ सह पायेगा।
दर्द तुमने अगर अब इसे फिर दिया,
अश्क बनकर यह आँखों से बह जायेगा।

आज मजबूरियों का उठा फायदा,
प्यार स्वामी न नीलाम यों तुम करो।
एक दौलत मोहब्बत की मुझको मिली,
अश्क भी छीनकर मत जफा तुम करो।

सीने में अगर न दिल होता,
तो यह सारा जग रोता क्यों?
यदि पाप नहीं करतीं आँखे,
मोती-से आंसू खोता क्यों?

यह दिल यदि कांच नहीं होता,
यों बनकर मोम न गल जाता,
मुझकों भी दर्द नहीं होता,
संगमरमर-सा ही मुस्काता?

इतना भगवान् बता देते,
किसने तुमसे फरियाद किया?
क्या पाप किया जो मानव को,
देकर यह दिल बरबाद किया?

मधुभाव नहीं तुम देते तो
हमको फिर चाह नहीं होती,
'स्वामी' मुस्कान खिला करती
अधरों पर 'आह' नहीं होती।

जब तक इस तन में प्राण रहे,
तेरा पूरा हर मान रहे।
तब तक है प्रेम अमर अपना,
बस प्रेम-प्रणय का गान रहे।।

प्रियतमे! प्रेम-परिणय बन्धन
इस तरह नहीं तोड़ा करते।
प्रेयसि! हम प्राण दिया करते
पर वचन नहीं छोंड़ा करते।।

फिर पावन अग्नि-शिखा-सम्मुख
हमने संकल्प लिये हैं जो।
उनको हम तोड़ नहीं सकते,
आपस में वचन दिये हैं जो।।

जला दीप था स्नेह की ज्योति लेकर,
पतिंगा अगर प्राण देने न आता।
अगर दे समर्पण न वे मान देते,
प्रिये, दीप ही क्यों स्वयं को जलाता।

अतः तुम जलो ज्योति बनकर जहां में,
यही मांगता हूँ, यही कामना है।
इसी के लिए पूर्ण बलिदान देकर,
किया स्नेह की यह अमर साधना है।

ढूढ़ रहे थे देव सुधा को,
सप्त महासागर मथ डाला,
और हलाहल अगर मिला तो,
उसको भी हँसकर पी डाला।

सुधा-हेतु चिर शत्रु असुर को,
मित्र बना डाला देवों ने,
और सुधा की सुधि लेने में,
सब कुछ छोड़ा भू-देवों ने।

मनुज सुधा को खोज रहे हैं,
कितने युग बीते धरती पर,
कितने बार चढ़े फिर उतरे,
नील गगन तक जाकर युग-नर।

स्नेह सुधा है जिसके कारण,
यह धरती फिर एक हो रही,
मन-के द्वेष-भाव, कटुतायें-
सारी जाने कहाँ खो रहीं।

कितनी बनीं सभ्यता-संस्कृति,
और मिलीं मिट्टी में कितनी,
एक लक्ष्य को लिये सो गयीं,
निष्ठा कहाँ, सुधा में जितनी!

यही सुधा है, जिसके कारण,
अमर राहु ने शीश कटाया,
सच्चा खोजी रहा सुधा का,
खोया शीश, सुधा को पाया।

इसी साधना के कारण वह,
युगों-युगों तक अमर हो गया,
पहले एक मनुज-देही था,
सुधा प्राप्त कर युगल हो गया।

एक बूँद मिल गयी सुधा की,
तो स्थल पावन तीर्थ बन गया।
एक बूँद-बल कुम्भ सहज ही,
विश्व-जीत, निश्चिन्त सो गया।

बस सानिध्य सुधा का पाकर,
नाम सुधाधर जग में पाया,
ज्योति-हीन शशि को भी 'स्वामी'
पूजन-वन्दन अर्घ्य चढ़ाया।

प्रिये तुम्हें अर्पित करता हूँ,
जीवन का हर गीत मनोहर,
आओ सरगम में बस जाओ,
मेरे मन की मीत मनोहर।

मधुर-मधुर तेरी स्मृति प्यारी,
जीवन का संगीत बनेगी,
प्यार बनेगा गीत हमारा,
अमर हमारी प्रीति बनेगी।

मुझे तुम्हारी बाँहों में ही,
शत स्वर्गों का राज्य मिलेगा,
अंक तुम्हारा 'स्वामी' प्रेयसि!
नन्दन कानन वहीं खिलेगा।

जानकी जान की विपदा में,
पर राम नहीं शिवराम हुआ।
कामना हमारी क्यों रहती,
जब योगिराज निष्काम हुआ।

यदि विजय प्रेम की होती है,
क्यों स्नेह हमारा 'अजय' रहा?
'स्वामी' न प्रभाव प्रभावमयी,
क्यों व्यर्थ हमारा विनय रहा?

प्राणदा सुधा-सी, शुभ स्नेहमयी श्रद्धा सी,
शची सी शक्तिमयी शिवा शान्ति दुर्गा है।
सरस्वती प्रभा-सी मंजु अरुणा उषा सी है
औषधि हृदय की आप पावन प्रेम गंगा है।

देवी सी दिव्य ज्योति दींपित मुख मण्डल वह,
अन्तर्मन कोमलता जैसे साकार हुई।
मानव लघु सीमा में परिसीमित होती क्यों,
जैसे दिव्यात्मा की आभा विस्तार हुई।

महाभाग्य असुरों का, जन्मी पौलोमी ज्यों,
कलुषित मानवता में निर्मलता लानी थी।
ऋषि मुख शुभ वेद मन्त्र अथवा तप योगी का,
जीवन वरदान रूप मेधाविन् आनी थी।

सम्भवतः स्वर्ग कमल शुक्ला शुभ दिव्य गन्ध,
ज्ञानमयी प्रतिभा वह स्वर्गिक प्रभा-सी है।
मानव अविवेक जाल छिन्न-भिन्न करने को,
एक मात्र काया भी अलका-सभा-सी है।

सुनते थे पहले भी स्वर्ग बहुत सुन्दर है,
अलका तो उसमें भी दिव्य राजधानी है।
मैंने कब सोचा था प्रेयसि की काया में,
सीमित हो 'स्वामी' की सीमा भी आनी है।

जीवन का हर गीत, गीत का,
शब्द-शब्द अर्पित तुमको,
प्रिये मधुर स्नेहिल सस्मित मुख,
मिला स्वर्ग वैभव मुझको।

मेरे जीवन के वसन्त की,
सुषमा स्नेह सुधा प्यारी,
साकार प्रीति माधुरी स्वयम्,
तुम अलका की शोभा न्यारी।

शब्दों में कितनी क्षमता हो,
जो व्यक्त भावना कर पाये।
तुम नन्दन कानन की शोभा,
अर्चना जगत् की या सारी।

तुम मञ्जु स्नेह या ज्योतिपुञ्ज,
कर नष्ट पूर्ण जीवनतम को।
जीवन का हर गीत गीत का
शब्द-शब्द अर्पित तुमको।

तुम उषा स्नेह या प्रभा-लोक,
जीवन का स्वप्न मनोरम हो,
अर्चन वन्दन के साथ-साथ,
रञ्जन हो, तुम शाश्वत शम हो ।

तुम मेरे मानस की वीणा,
मेरे गीतों की पीड़ा हो,
मुझको न दूर करना प्रेयसि,
तुम मञ्जु ह्रदय से निर्मम हो।

जब कभी स्नेह की चर्चा हो,
प्रतिमान कहें स्वामी हमको।
जीवन का हर गीत गीत का,
शब्द-शब्द अर्पित तुमको।।

जैसे बिछडी हुई प्रेयसी,
फिर बांहों की सेज सो गयी,
वैसे ही प्यासी धरती को,
यह पहली बरसात हो गयी।

दिल की तरह धरा जलती थी,
भावों से प्राणी घुटते थे,
भू से अम्बर की उँचाई,
देख-देख सपने लुटते थे ।

तभी अचानक घन घिर आये,
स्वामी कैसी बात हो गयी।
वैसे हो प्यासी घरती को
यह पहली बरसात हो गयी।

सहयोग भावनामय देकर,
प्रज्वलित रखा जीवन प्रदीप,
सांसों की सीमा को अर्पित
चेतन प्रकाश का दीप-दीप।

यह नीति प्रीति माधुरी गीत,
तनु-मंजु-स्नेह-सीमा-प्रभाव।
यह दीपालोक शारदा-सा,
मधु अलका सुषमा सहज भाव।

चेतना व्याप्त है विश्व रूप
वह प्रेम भाव मेरा विदेह।
स्वामी सविता सा तेजपुंज
मेरे गीतों में सहज स्नेह।।

स्नेह तुम्हारा ही है जो यों,
बनकर गीत बहा करता है।
बहुत बड़ा उपकार यही, जो
इतना दर्द रहा करता है।।

नहीं मधुर तुम प्यार दे सकी,
पीड़ा का वरदान न कम है,
भरा अश्रु का कोश बहुत है,
रीता नहीं अभी संगम है।।

जितना चाहो तड़पा लो तुम,
बहुत धैर्य बाकी है मुझमें,
जीवन हो संगीत तुम्हारा,
मेरा दर्द भरा सरगम है।।

मेरे जीवन के बसन्त हो,
पतझड़ भी स्वीकार करूंगा,
इतना भी उपकार तुम्हारा,
जीवन-दान दिया करता है।।

स्नेह तुम्हारा ही है जो यों,
बनकर गीत बहा करता है।
बहुत बड़ा उपकार यही, जो
इतना दर्द रहा करता है।।

मैने कब माँगा है तुमसे,
मृदु मुस्कानें अर्पित कर दो,
मैने कब चाहा है प्रेयसि!
जीवन को फूलों से भर दो।।

मैं कांटे ही अपना लूंगा,
अभ्यासी हूँ इन राहों का,
एक अकिंचन कब चाहेगा,
चहक रही महफिल बलि कर दो।।

महकी रहे तुम्हारी बगिया,
मेरा कोना ही मरघट हो,
'स्वामी शरण' तुम्हारी आशा
ले मधुगान किया करता है।।

स्नेह तुम्हारा ही है जो यों,
बनकर गीत बहा करता है।
बहुत बड़ा उपकार यही, जो
इतना दर्द रहा करता है।।

नन्हीं-नन्हीं कोपलें उगीं,
निर्मल जल तजकर रूप तरल,
कविता से अधिक-अधिक कोमल
सुकुमार षोडषी लाजमयी,
भावुक वाला का ज्यों हृद्तल।

नन्हीं-नन्हीं कोपलें उगीं,
आश्विन का नील गगन निर्मल,
वह पूर्ण चन्द्र-चन्द्रिका धवल,
ज्यों प्रिय मधुरस्मृति में निमग्न,
लेटी दूवों की सेज मृदुल।

नन्हीं-नन्हीं कोपलें उगीं,
मृदुता ही सुरभित सदृश-मलय,
कर हृद्-तन्त्री में झंकृत लय,
सब मनुज-मनस् सद्भाव-विलय,
हो मानव-मन मृदु सम किसलय।
नन्हीं-नन्हीं कोपलें उगीं,
कलिका न सुमन, केवल किसलय।।

ॐ

युगबोध

द्वादश सुमन

साधुता

चन्द्रमा नभ-मध्य शोभा-धाम है।
पृथक तारों से नयन अभिराम है।।
वहाँ न्यायालय-सभा में शान्ति से।
ठीक वैसे ही विभूषित कान्ति से।।

अन्य अधिवक्ता-गणों के साथ में।
न्याय की पुस्तक लियें वे हाथ में।।
और जो पगड़ी लपेटे शीश पर।
वार करती रही न्यायाधीश पर।।

सहज मुद्रा में वहाँ बैठे हुए।
दनुज-मानस-शूल-सम वे थे छुए।
भारतीय स्वरूप यह न सहा गया।
बिना टोके अधिक तो न रहा गया।।

कहा तब यों कुटिल न्यायाधीश ने।
दुष्ट-मानस-मण्डली के ईश ने।।
यदि यहां हो बैठना तुमको कभी।
छोड़ देना चाहिए तुमको तभी।।

मूर्खो की मूर्खता का चिह्न है।
शीश पर पगड़ी तुम्हारे भिन्न है।।
छोड़ देनी चाहिए तुमको वहीं।
सभ्यता का चिह्न यह तो है नहीं।।

अतः होगा उचित इसे उतार दो।
पहनने का त्याग विकृत-विचार दो।।
उन्हे सम्बोधित किया तब वीर ने-
नम्र वाणी में भरत से धीर ने।

'विज्ञ न्यायधीश का यह कर्म है।
धर्म तो है नहीं, अपितु अधर्म है।।
नागरिक की भांति मैं आया यहाँ।
पट पहनता जो मुझे भाया जहाँ।।

निजी रुचि-अनुरूप जीवन शुद्ध है।
अन्य-आश्रित कृत्रिम, नीति विरुद्ध है।।
मनुज की अभिरुचि सदा स्वाधीन है।
कभी चिन्तन नहीं अन्याधीन है।।

राज्य सम्भव पूर्णतः संसार पर।
पर न सम्भव कभी राज्य विचार पर।
इसलिए इस भावना को तोड़ दें।
इस तरह से वाध्य करना छोड़ दें।।

यदि धधकती अग्नि में चन्दन कहीं-
डाल दें तो लगेगा जलने वहीं।।
क्रोध में इस तरह न्यायाधीश के।
वचन चन्दन से गिरे जन ईश के।।

क्रोध उसमें अधिक ही बहने लगा।
ओर मोहन से वचन कहने लगा।।
'बड़ा आया नीति का मर्मज्ञ है।
समझता तू स्वयम् को सर्वज्ञ है!

तू मुझे ही नीति बतलाने चला।
न्याय-पति को न्याय सिखलाने चला।।
तू समझता स्वयम् को है कहो क्या?
मान बैठा तू विधाता अहो! क्या?

और मोहन ने कहा यों - 'शान्त हों।
क्रोध की अभिवृद्धि कर मत क्लान्त हों।।
क्रोध में तो बुद्धि होती क्षीण है।
मूर्ख हो जाता मनुष्य प्रवीण है।।

अतः होकर शान्त चित्त विचिन्तिये।
क्या उचित, जो शब्द उच्चारित किये?
इस समय पर क्रोध करना व्यर्थ है।
वृद्धि कर सकता अनेक अनर्थ है।।'

सहन होते थे न उसको वचन यों।
व्याधि-वाधित व्यक्ति को मिष्ठान ज्यों।।
'यदि नहीं पगड़ी तुम्हारी त्यक्त हो।
तुम बहिर्गत यहाँ से परित्यक्त हो।।'

यों कहा उसने तथा मोहन चले।
वचन कहते न्याय के मण्डप तले।।
'विज्ञ न्यायधीश कृपया ध्यान दें।
मत मनुज को मनुजतर अपमान दें।।

सर्वदा ही यह अनर्थक कर्म है।
मनुज के हित हेतु विज्ञ! अधर्म है।।'
और बाहर वीर अब्दुल्ला कहे।
'दुष्ट के कटुवचन क्यों सहते रहे?

वचन की धारा इधर शीतल वही।
उधर लेकिन अग्नि ही जलती रही।।'
और फैले अधर थे फिर प्यार से।
कहे मोहन-'देख वन्धु विचार से।।

दुष्टता ही यदि दिखाता मैं वहाँ।
भेद रहता दुष्ट में, मुझमें कहाँ?
तुम्हे दिखता एक मैं भी दुष्ट ही।
और उससे कहीं अधिक कुदृष्ट ही।।

दुष्ट के संग धैर्य ही है वीरता।
और झुकना नहीं, है रणधीरता।।
दुष्टता का इस तरह प्रतिकार हो।
स्वर्ग सा सुन्दर सुखद संसार हो।।

'धन्य हो तुम, मनुज हो या देवता?'
वीर अब्दुल्ला यहाँ पर सोंचता।।
और अगले दिवस समयाचार में।
कीर्ति मोहन की छपी संसार में।।

इसी घटना से रंगे सब पत्र हैं।
एक मोहन छा गये सर्वत्र हैं।।
'है अवांक्षित अतिथि' लोगों ने लिखा-
गया न्यायाधीश को दर्शन दिखा।।

क्षेष्ठ उनका कर्म अनुकरणीय है।
विज्ञजन में व्यक्ति आदरणीय है।।
और जब वह पत्र अब्दुल्ला वहाँ -
पढ़ा, मोहन को दिखा कर यों कहा।।

'आपकी महिमा महान विचित्र है।
कृत्य का संवाद सुन्दर चित्र है।।
विश्व में तो कीर्ति कुन्दन हो गया।
दर्प न्यायाधीश का अब खो गया।।'

सविनोद सस्मित अधर यह उसने कहा।
किन्तु मोहन-ह्रदय में यों न रहा।।
कहा मोहन ने - 'उचित यह है नहीं।
पालना दुर्भावना को मत कहीं।

मनुज मानव से करे यदि द्वेष ही।
रहेगा मनुजत्व भी क्या शेष ही?
शत्रु से भी प्रेम हम करने लगें।
और उसके कष्ट भी हरने लगें।।

शत्रुता ही यदि विषय हो द्वेंष का।
समय उत्तम ज्ञान के उन्मेष का।।
सर्वजन हित में सुखद शुभकामना।
प्राणियों में भरें जो सद्भावना।।

पाप से हो घृणा, पापो से नहीं।
फले फूले भावना यह सब कहीं।।
तो मनुज बन सके अनुपम देवता।
स्वर्ग सी भू पूर्ण हो धन धान्यता।।'

कहा उसने उचित अवसर मान कर।
'हल करों सम्मुख-समस्या ज्ञान-धर!
जिसके लिए मैंने बुलाया आप को।
दूर कर दें प्रथम उस सन्ताप को।।

सेठ तैयव से करूँ मैं प्यार तब।
बिना संघर्षण मिले वह अर्थ जब।।
शत्रु से भी प्रेम है सम्भव कहीँ।
यो मुझे विश्वास होता है नहीं।।

हो रहा है व्यय हमारा व्यर्थ ही।
न्याय का कुछ ˉअर्थ है कि अनर्थ ही।।
शत्रु से भी प्रेम है सम्भव यहाँ।
लोग न्यायालय भटकते फिर कहाँ?

कहा मोहन ने-'नहीं संघर्ष से।
कार्य होगें प्रेम के उत्कर्ष से।।'
पत्र को तत्कल ही प्रस्तुत किया।
और मोहन ने इसे जब पढ़ लिया।।

'अधिवक्ता प्रेषित है' — तब बताया।
तथा तत्काल निज जन को बुलाया।।
आप मेरी ओर से यदि जा सके।
तथा गुत्थी को सहज सुलझा सके।।

पूर्ण तब मेरा उचित उद्देश्य हो।
और हम दोंनो में न कुछ द्वेष हो।।
कहा मोहन ने, - 'करो चिन्ता नहीं।
यदि कहेंगे आप, जाऊँगा वहीं।।

और तैयब सेठ से सम्पर्क हो।
फले फिर से प्रेम, हो कैसा कहो?'
'और इससे क्षेष्ठ फल भी है कहाँ?'
सेठ अब्दुल्ला ने हर्षित हो कहा।।

और उनके कार्य के हित आज मोहन,
खेलने अब जा रहे हैं संकटों से।
स्वयम् देखेंगे प्रवासी बन्धुवों का,
है भरा पथ किस तरह से कंटको से।।

ॐ

युगबोध

त्रयोदश सुमन

कर्तव्य

पुस्तक करस्थ, पढ़ रहे मग्न होकर मोहन,
मृदु भाव हो रहे विम्बित थे मुखमण्डल पर।
आनन्द मिल रहा था अनन्त सानिध्यों का,
जब महापुरुष का, पहुँच गये तिष्ठन-थल पर।।

नेटाल राज्य का राज्यकेन्द्र मेरित्सवर्ग,
तिष्ठित गाड़ी विश्राम-हेतु इस समय जहाँ।
पटरों पथ के कुछ अधिकारी आ पहुँचे थे,
वे चकित रह गये भिन्न वर्ण नर देख वहाँ।।

वे पथिक प्रथम क्षेणी के थे, हो श्याम-वर्ण,
कह 'कृष्ण श्वान' व़ह चीख पड़ा था ऊँचे स्वर में।
'तत्काल किसी तृतीय कोष्ठ में जाओं तुम,
साहस कैसा यह तुम जैसे पशुवत् नर में।।'

तथा बुलाकर रक्षिण को आदेश दिया यों -
'गाड़ी से इस नर पशु को तत्काल उतारो।
यह असभ्य एशिया-निवासी पामर-पशु है,
इसके प्रति मत करुणा का तुम भाव विचारों।'

और तभी रक्षिण ने कर को निज करस्थ कर,
बलपूर्वक मोहन को भूमि उतार दिया।
तथा वस्तुयें फेंक वहीं पर, चले गये वे,
गम्भीर प्रकृति मोहन ने हृदय विचार किया।

'जो वचन सेठ अब्दुल्ला को दे आया हूँ
जब तक देहस्थ आत्मा है, मैं पालूँगा।
जो वर्ण द्वेष की महाव्याधि अन्याय-पूर्ण,
मैं बीज यहाँ इसके समाप्ति का डालूँगा।।

निश्चय कर महाप्रबन्धक को कर दिया तार,
निर्विघ्न यात्रा का उसने तब वचन दिया।
इस भाँति चार्ल्सटाउन पहुँचे मोहन स्वामी,
यात्रा अब अश्व सिकरमों से प्रारम्भ किया।।

सिकरम द्वारा जोहानिस्वर्ग मोहन पहुँचे,
पटरी पथ के अधिनियमों का अध्ययन किया।
एशिया-वासियों के विरुद्ध अवरोध न पा,
तिष्ठनपति को तत्काल एक लिख पत्र दिया।।

उसमें प्रथमेव प्रवर अधिवक्ता सूचित था,
उत्तर के हेतु स्वयम् मिलने की अभिलाषा।
पत्रोत्तर मिलना तो नकार का निश्चित था
सम्मुख होने से कार्य-सिद्धि की थी आशा।।

तिष्ठनपति के सम्मुख मोहन जब बैठे थे,
भवदीय पत्र ही सम्भवतः वह प्रेषित है।
निर्विघ्न और मंगलमय यात्रा पूर्ण करें,
हे विज्ञ महाशय, यह मुझको भी इच्छित है।।'

जोहानिस्वर्ग के एक निवासी सेठ गनी,
आये थे मोहन के ही साथ यहाँ पर भी।
वे देख असम्भव कौतुक यह रह गये चकित,
थी प्रथम वर्ग की अनुमति भी हो गयी अभी।।

बोले - ' यह कर्म अभूतपूर्व है तथा असम्भव,
नहीं आज से पूर्व कभी भी यह हो पाया।
भारतीय यात्री को श्रेणी प्रथम मिले,
सौभाग्य-दिवाकर उदय न नभ में हो पाया।।

दो अधरों पर मुस्कान खिल गयी सर्व प्रथम,
बोले वे, कर्म महान नहीं यह था ऐसा।
मन-मानस में यदि तीव्र लक्ष्य-अभिलाषा हो,
प्रत्येक कार्य सम्भव है, हो चाहे जैसा।।

अधिकार चाहते हो तो उसके योग्य बनो,
दृढ़ निश्चय कर फिर प्राप्ति-हेतु संघर्ष करो।
हैं सकल द्रव्य, अधिकार तुम्हारे करतलगत,
जितनी अभिलाषा हो, उतना उत्कर्ष करो।।'

'सत्येव कथन है' — सेठ गनी हैं सोच रहे,
'वास्तव में दुर्गुण-ग्रस्त नहीं अधिकारी हम।
हैं मलिन हमारा रहन-सहन, है भेद-भाव,
है बने अशिक्षित, कर्महीन, अविचारी हम।।'

साकार बना कर्त्तव्य चला सस्मित आगे,
तब हुआ कर्णगत यों कर्कश स्वर जर्मिस्टन में।
'तृतीय श्रेणियों में तत्काल चले जाओ',
वे शान्त भाव कह रहे, विक्षोभ नहीं मन में।।

है दिया प्रथम क्षेणी का व्यय मैने भी जब,
तृतीय श्रेणियों में जाना स्वीकार नहीं।
सह यात्री बोला - 'सता रहे तुम क्यों इनकों?
तुम इन्हें उतारो, है तुमको अधिकार नहीं।।'

मोहन से बोला - 'भद्र पुरुष! निश्चिन्त रहे'
तत्काल गया वह दुष्ट पुरुष लज्जित होकर।
यात्री को मोहन का वह निर्मल स्नेह मिला,
भावी यात्रा में रहा अभिन्न-हृदय बनकर।।

तिष्ठन प्रिटोरिया तक मोहन यों पहुँच गये,
प्रातः दिनकर के किरण संग दिनकर पहुँचा।
अधिवक्ता बेकर के प्रांगण स्वर्णिम प्रकाश,
के साथ-साथ अभिनव प्रकाशधर नर पहुँचा।।

सस्नेह मिले बेकर मोहन से, बैठाया,
तब कुशल-प्रश्न, परिचय तत्क्षण ही कर डाला।
फिर बोले - 'लम्बी और क्लिष्ट समस्या है,
परिपूर्ण उलझनों से एवम् गुत्थी वाला।।

सहयोग आप कर देंगे, होगा कार्य सरल,
तथ्यों का संग्रह आप उचित ही कर लेंगे।
आवास व्यवस्था मुझे आपकी करनी है,
सोचा था, जब आयेंगे, तब निर्णय लेंगे।।

है एक बहन भटियारे की निर्धन नारी,
यदि वहाँ रहें सहयोग उसे भी मिल जाये।
परिपूर्ण कन्टकों तथा पंक के जीवन में,
कुछ सुमन जलज एवम् गुलाब के खिल जायें।।,

ज्यों मिले भीलनी को वन में थे राम चन्द्र,
वैसे ही मोहन उस भटियारी की नारी को।
जिस भांति राम ने कष्ट अहिल्या का काटा,
दे दिया शांति वैसे ही संकट-मारी को।।

उसने भोजन तैयार किया कोमल कर से,
लायी वह सुन्दर थाल स्नेह-रस भरा हुआ।
जग-सकल व्यञ्जनों से था अधिक स्वाद जिसमें,
सर्वाधिक स्वाद-पूर्ण स्नेहिल रस-धार वहाँ।।

एतद् पश्चात् सेठ तैयब से भी परिचय,
करने मोहन ने उनके भवन प्रयाण किया।
हर्षित होकर स्वागत अभ्यागत का करके,
तैयब जी ने मोहन का परिचय-ज्ञान किया।।

बोले मोहन - 'भारत के सभी प्रवासी से,
परिचय करने की मन मानस में अभिलाषा।'
तैयब बोले-'हे कर्मवीर! हे धर्मवीर!
मिलना कष्टों से त्राण हमें भी है आशा।।

सौभाग्यवान् मै भी हूँगा सेवा करके,
हों सेतु-बन्ध में कुछ रेतीले कण मेरे।
भवदीय कृपा से योगदान हो जायेगा,
संयुक्त रहेंगे सदा आपके ही प्रेरे।।'

'हम एक सभा कर लें सबको आमन्त्रित कर,
यों सर्वप्रथम परिचय का कार्य पूर्ण कर लें।
फिर पारस्परिक परिस्थियों से अवगत हो,
कटुभाव जनित सारे दुर्भाव चूर्ण कर लें।।

जूसब-आवास-भवन में एक सभा करके,
मोहन ने प्रथम बार विधिवत् उपदेश किया।
शुभ सत्य धर्म दैनिक जीवन का रहन-सहन
सम्बन्धित विषयों पर अनुपम निर्देश दिया।।

'हे पुण्यभूमि भारत के वासी धर्मवीर!
मानवता का पोषण कारी जीवन होगा।
भातृत्व प्रेम सहयोग परस्पर बना रहें
सबसे महान उज्ज्वलतम यह ही धन होगा।।

ये सत्य, धर्म, व्यवहार नहीं हैं पृथक्-पृथक्,
आचरण सत्य का सदा उचित व्यावहारों में।
जीवन में होगा सदा लाभकारी यह ही,
अपनाकर देखें एक बार आचारों में।।

तुम भारतीय हो और प्रवासी होने से,
कर्तव्य तुम्हें पालन द्विगुणित करना होगा।
अफ्रीका में भारत की निर्मल संस्कृति का,
कर्तव्य-चित्र उज्ज्वलतम ही रखना होगा।।

हैं हिन्दू, मुस्लिम, जैन, पारसी, ईसाई,
इस भेद-भाव को छोड़ हमें मिलना होगा।
बंगाली, उर्दू, हिन्दी, तमिल, तेलगू या,
कन्नड़, मलयालम को विस्मृत करना होगा।।

हम भारतीय बन जायें मिलकर लोग सभी,
अफ्रीका में नव जन्म एक मण्डल को दें।
है शक्ति संगठन में ही इस युग में समझे,
संघर्ष करें हम, दूर कष्ट सारे कर दें।।

हम नियमित करें सभाएँ इसी भांति मिलकर,
सब एक दूसरे के दुख को समझे-जानें।
अभिव्यक्ति विचारों की हम किया करें अपने,
इस भांति परस्पर लोंगो को हम पहचानें।।

अति आवश्यक है ज्ञान आंग्ल-भाषा का हो,
रहकर विदेश में बहुत अधिक उपयोगी है।
अधिकार-हेतु संघर्ष हमें करना होगा,
इस शीतल रण में अस्त्रों सा सहयोगी है।।

मोहन ने यों देकर प्रबोध,
    उज्ज्वल निर्मल अभिनव प्रकाश।
ज्यों बढ़ा दिया कर पथ प्रशस्त,
    था ध्येय सदा उत्तम-विकास।।

इतनी यात्रा का उठा कष्ट
    संकट को झेला है सहर्ष।
अब बेला है, हो सुफल-प्राप्ति
    अफ्रीकी जन को मिले हर्ष।।

ॐ

युगबोध

चतुर्दश सुमन

तुष्टि

अफ्रीका में अधिवक्ता से,
    मोहन थे आचार्य हुए।
शिक्षण भाषा आंग्ल देश की,
    प्रतिदिन नियमित कार्य हुए।।

महा अशिक्षा के दानव से,
    मुक्ति-युद्ध था छेड़ दिया।
अन्धकार अज्ञान-जनित पर,
    ज्ञान-रश्मि-सन्धान किया।।

जहाँ-जहाँ था अन्धकार यह,
    स्वयम् मिटाने को आये।
गृह-गृह ज्ञान रश्मि मण्डित हो,
    दिनकर कस निज कटि आये।।

अन्धकार से ग्रस्त व्यक्ति जो,
सम्भव, साहस छोड़ हटे।
पर दिनकर स्वरूप थे मोहन,
नूतन साहस सदा डटे।।

है अज्ञान परम रिपु अपना,
यही नहीं बढ़ने देता।
प्रगति-सफलता के शिखरों पर,
हमें न यह चढ़ने देता।।

आकांक्षा उन्नति की है यदि,
प्रथम चरण रखना होगा।
दूर अशिक्षा को करके ही,
पग आगे करना होगा।।

वर्तमान जीवन की अपने,
सबसे प्रमुख समस्या है।
दूर अशिक्षा को करना ही,
सबसे बड़ी तपस्या है।।

ज्ञान-यज्ञ के आयोजन में,
मोहन बने पुरोहित थे।
ज्ञान-धूम उठ रहा सुगन्धित
निहित सर्व जन के हित थे।।

हवन-कुण्ड तम-आवृत मानस,
समय तथा श्रम ही समिधा।
शिक्षण-पाठ-समोच्चारण ही,
अनुपम 'स्वाहा' और 'स्वधा'।।

'स्त्रुवा' लेखनी, मसि 'सुरसुरि जल'
'धूप'—अगर सद्भावों का।
तथा हवन-सामग्री उत्तम,
वे लिये पुस्तिकाओं का।।

नूतन ऋषि, नूतन विधि से ही,
नूतन हवन किया करते।
नव हवनों की नव विद्या का,
नव-नव ज्ञान दिया करते।।

ज्ञान तथा जागरण यज्ञ का,
बहुधा आयोजन होता।
निन्द्रा-विगत, नयन-उन्मीलित,
अन्धकार-भञ्जन होता।।

पावन नये धर्म-कृत्यों का,
दिग्दर्शन वे करा रहे।
नवयुग के अनुकूल लाभप्रद,
सत्य-धर्म-अनुकूल कहे।।

नव यज्ञों का पुण्य मनोरम,
शीघ्रमेव प्रत्यक्ष हुआ।
प्रथम प्रथम श्रेणी यात्रा का,
अनाचार ही लक्ष हुआ।।

हो विरुद्ध दुर्भाव दनुज के,
महायज्ञ की तैयारी।
जन-जन मिलकर चले मिटाने,
यह व्यवहार दुराचारी।।

महायज्ञ में समय तथा श्रम,
की आहुति दे दे करके।
उठी द्रोह की ज्वाला भीषण,
तड़-तड़-तड़-धू-धू करके।।

जब अनन्त कुण्डों में जागी,
द्रोह-वह्नि की वह ज्वाला।
दक्षिण अफ्रीका की वह भू,
बनने लगी यज्ञ-शाला।।

भारतीय दक्षिण-अफ्रीका-
वासी जन यजमान बने।
तथा सभाओं के आयोजन,
निर्मल नवल वितान तने।।

महायज्ञ में आंग्ल-निवासी,
प्रकटे असुर विध्न-कारी।
पर आचार्य प्रबल मोहन थे,
पुण्यवान तपबल-धारी।।

निष्फल असुर योजनाएं सब,
    चट्टानों से टकराना।
नीर-प्रवाहों का, एवम् फिर,
    लज्जित वापस आ जाना।।

निर्णय दिया परजित होकर,
    यों विभाग-पटरी पथ ने।
प्राप्त किया अधिकार यात्रा,
    श्रेणी प्रथम देश जन ने।।

प्रथम यज्ञ में मिली सफलता,
    जन-जन का उत्साह बढ़ा।
यज्ञ नये प्रत्यक्ष लाभप्रद,
    आयोजन-विश्वास बढ़ा।।

और इधर मोहन ने सोचा,
    मुख्य कार्य जो है करना।
वचन दिया है अब्दुल्ला को,
    झगड़े का निर्णय करना।।

एक दिवस तैयब से मोहन
    बोले-'मेरे मित्र कहो।
कब तक आपस के झगड़े में,
    व्यय का अनुचित भार सहो?

इससे दोंनो के मानस में,
    आ पाती है शान्ति नहीं।
विद्वेलित मानस के होते,
    मुख-मण्डल पर कान्ति नहीं।।

हो निश्चिन्त अन्य कार्यों में,
    हो पाते संलग्न नहीं।
चिन्तित तुम दोंनो रहते हो,
    क्या जीवन है भग्न नहीं?

अधिवक्ता का उठा रहे हो,
    तुम दोंनो ही भार बढ़ा।
जितनें धन की मूल समस्या,
    व्यय उससे अति बढ़ा-चढ़ा।।

तुम दोंनो ही सम्बन्धी हो,
    इतनी हानि उठाओ मत।
यों अविवेक-युक्त कर्मो से,
    जीवन-लाभ मिटाओ मत।।

पारस्परिक प्रेम में अपने,
    खाई यों नहीं बनाओ।
अच्छा होगा पुनः खो गयी,
    पूर्व प्रेम-सम्पति पाओ।।

दो एक पुनः एकादश हों,
    गाड़ी के दो चक्र बनें।
भारतीय बल रहें अखण्डित,
    यों सम्बन्ध न वक्र बनें।।

तुम दोंनो मिल अफ्रीका में,
    ऊँचा भारत-मान करो।
भारतीय भाई लड़ते हैं,
    मत ऐसा अपमान करो।।

अल्प प्रवासी-आचारों से
    भारत की गरिमा होती।
कलुषित अल्प चरित्रों से ही
    अपमानित निज माँ होती।।'

तैयब बोले - 'बन्धु सत्य है,
    कही आपने जो बातें।
अल्प हमारे दुष्कर्मों से,
    लगती जननी को घातें।।

नहीं हमें दुर्भाव पालना,
    यह तो समझ सका हूँ मैं।
किन्तु मिटाएं उसको कैसे?
    खोजी इस पथ का हूँ मैं।।'

'इसके लिए यही करना है,
    सदभावों का सम्बर्द्धन।
लहरें-स्नेह हिलोरे लेती,
    मानस-करें सदा नर्तन।।

पारस्परिक समस्याओं को,
    सुलझा सकें परस्पर ही।
दौड़े नहीं कभी न्यायालय,
    घर की बातें घर में ही।।

या निष्पक्ष आप्त जन के ही,
    रखें समस्या हम सम्मुख।
स्वीकारें विवेकमय निर्णय,
    हठधर्मी से हो प्रतिमुख।।

इस विधि से ही निर्णय कर लो,
    कितनी अच्छी बात रहे!
शीतल हो मष्तिष्क सभी का,
    अब तक चिन्ता-चिता दहे ।

'यह स्वीकार मुझे है मोहन,
    होगा क्या इससे उत्तम?
पर अब्दुल्ला क्या मानेंगे,
    उन्हें जानते जितना हम?

मोहन अधर प्रथम मुस्काये,
    फिर उनसे वाणी निकली।
'यदि ऐसे थे अब्दुल्ला तो
    भूलो सब बातें पिछली।।

जैसे हो तुम उचित समझते,
    है स्वीकार उन्हें भी यह।
मैं प्रस्थान-पूर्व ही उनसे,
    बोला तो हर्षित थे वे।।

अतः कार्य अब पूर्ण जानिए,
    यथा उचित निर्णय होगा।
पञ्च नियुक्त करो अब दोंनो,
    स्नेह-सत्य ही जय होगा।।'

फिर तो अथक परिश्रम करके,
    पंचो की नियुक्ति भी की।
न्याय प्रक्रिया से निर्णय में,
    विजय हुई अब्दुल्ला की।।

अब्दुल्ला अब माँग रहे थे
    अपना धन तैयब जी से।
विजयी थे, अधिकार अतः था,
    मिला पञ्च के निर्णय से।।

मोहन को सन्तोष कहाँ था,
    केवल ऐसे निर्णय से?
अब्दुल्ला को बता रहे थे,
    'उचित न मानवता नय से।।

षष्ठ लक्ष धनराशि तुम्हे यदि
    यों तैयब जी दे देंगे।
तो अपनी व्यापार-शक्ति को
    वे निश्चय ही खो देंगे।।

अतः उचित होगा यह तुमको,
    उनको अधिक समय दे दो।
धीरे-धीरे वे धन देंगे,
    तुम महानता परिचय दो।'

'यदि आदेश तुम्हारा मोहन!
    तो स्वीकार मुझे यह भी।
ले लेते हम सदा पूर्ण धन,
    उसी समय पर निश्चय ही।।'

मोहन की इस स्नेह शक्ति से,
    उनमें स्नेह-विकास हुआ।
डूबे तम के गहन गर्त में
    प्राप्त नवीन प्रकाश हुआ।।

वैर भाव पुष्पित होता था,
    कितना काल व्यतीत हुआ।
मोहन के नव स्नेह-यज्ञ से,
    अब वह कालतीत हुआ।।

किसी व्यक्ति से बड़ी शक्ति है,
    स्नेह-शक्ति इस भूतल पर।
स्नेह-शक्ति से विश्व टिका है
    स्नेह-शक्ति से हम तल पर।।

स्नेह-शक्ति से अणु-अणु मिलकर,
सारे द्रव्य बनाते हैं।
और परम-अणु स्नेह-शक्ति से,
मिलकर अणु बन जाते है।।

नाना अवयव से मिलकर ही,
परमाणु बना करता है।
अवयव का कुटुम्ब भी उसमें,
स्नेह-शक्ति से रहता है।।

स्नेह-पूर्ण जीवन हो अपना,
वाणी सदा स्नेहमय हो।
स्नेह-शक्ति के अमर देवता,
मोहन की जय हो! जय हो!!

स्नेह न होता, गीत न होता,
व्यक्ति, व्यक्ति का मीत न होता,
सरस न होता, नीरस जीवन
प्राणों का संगीत न होता।

फूलों में मकरन्द न होता,
कवि-वाणी में छन्द न होता।
क्यों सरिता में उठता कल - कल,
हृदय-हृदय में बन्द न होता।

मधुप सुमन पर क्यों मंडराता?
स्वयम् कमल में कैद न पाता,
और पतंगा दीपक-लौ पर,
कैसे तन-मन-प्राण लुटाता।

स्नेह राग है, स्नेह रंग है,
पञ्चम स्वर वाला विहंग है,
स्नेह मृदुल किसलय मधु ऋतु का,
विश्व-व्याप्त पावन अनंग है।

मधु वसन्त अनुताप अन्त है,
स्नेह सजनि है, स्नेह कन्त है।
स्नेह मूल है सम्बन्धों का,
स्नेह देव है, स्नेह सन्त है।

स्नेह सुधा-सा रक्षा-बन्धन,
पावन सूत्र, सुगन्धित चन्दन,
स्नेह मृदुल रोली-अक्षत है,
कुसुम, खिला जो उपवन नन्दन।

स्नेह गृहों-तारों की गति में,
कारण मूल व्याप्त संगति में,
स्नेह ज्योति है भानु-रश्मि की,
मूल तत्व है जीवन-गति में।।

ॐ

युगबोध

पञ्चदश सुमन

मुक्ति

अफ्रीका में सत्याग्रह का,
मोहन ने कर दिव्य प्रयोग।
लोक शक्ति का दर्शन देकर,
सिखलाया नूतन सहयोग।।

अत्याचार मिटा दिखलाया,
जन-गण-मन को नया प्रकाश।
जन-जन को साहस सिखलाया,
जन जीवन अब नहीं निराश।।

अन्यायी अतिचार मिटाकर,
जन-जन को सत्कार दिलाकर,
पूर्ण मुक्ति का मार्ग दिखाया,
मोहन ने फिर भारत आकर।।

नील कृषक का कष्ट मिटाया,
दाण्डी जाकर नमक बनाया,
फिर अंग्रेजों भारत छोड़ो,
अतुल घोष कर देश जगाया।।

उसी समय नेता सुभाष ने
राष्ट्रपिता से ले आशीष।
दिल्ली चलो गर्जना कर दी,
चिन्तित कम्पित शत्रु महीश।।

सेनानी की हुंकारों से,
मिली राष्ट्र को नूतन राह।
रक्त मुझे दो तुम, मैं तुमको,
मुक्ति दिलाऊँगा, यह चाह।।

पर सुभाष के मित्र राष्ट्र सब,
हुए पराजित, यह आघात।
अन्तर्ध्यान हुआ सेनानी,
शत्रु खोजते, वह अज्ञात।।

पर मोहन के सत्याग्रह की,
असहयोग की शक्ति अचूक।
शत्रु बहुत भयभीत हो चला,
भारत छोड़ो स्वर दो-टूक।।

राष्ट्र करो या मरो मन्त्र से,
उत्साहित हो गया अजेय।
भारत से जाने की वाणी,
बोला स्वयम् शत्रु दुर्जेय।।

आंग्ल राज्य के शासक बोले,
हम भारत को देंगे छोड़।
असहयोग की दिव्य शक्ति का,
नहीं विश्व में कोई तोड़।।

मुक्ति पर्व की तैयारी में,
मग्न हो गया सारा देश।
अब अंग्रेजी छोड़ो, आया,
राष्ट्र पिता का यह सन्देश।।

हटे यह अंग्रेजी का भार
करें वैदिक संस्कृत स्वीकार।
एक हो भारत स्नेह अपार
विश्व संस्कृति से करते प्यार।।

मूलकर जाति, पंथ, समुदाय,
हमारा शत्रु एक अन्याय।
करे मिलकर हम सभी उपाय
मिले जिससे जन मन को न्याय।।

सभी को अवसर मिले समान,
न हो समरसता मे व्यवधान।
विश्व संस्कृति का सबको ज्ञान
करे मिल योग साधना ध्यान।।

रचें प्राचीन दिव्य इतिहास।
मधुरतामय हो वाद - विमर्श।।
करे सहभागी मिलकर कर्म
विश्व में विकसित भारत वर्ष।।

मिटे अब जातिवाद का भेद,
न हो बेकारी का फिर खेद।
व्यर्थ जाये मत श्रम का स्वेद,
सभी नर नारी गायें वेद।

करें सब ऋषियों का सम्मान,
न हो मानव मणि का अपमान।
शुक्र या वाल्मीक भगवान्,
वेद ऋषि व्यास, बुद्ध भगवान्।।

पूज्य इतरासुत दासी वंश,
अकुल जाबाल वेदविद् हंस।
अपाला शबरी देवी अंश,
अनादर इनका निजमति भ्रंश।

न अब फिर कोई सत्ता नीति,
किसी के दिल से छीने प्रीति।
सरल समरस हो मानव जाति,
भुला सब भेद भाव इस भांति।।

सुखी होते जो देख विनाश।
करो दुर्मति का सत्यानाश।
मिले उनको सद्बुद्धि प्रकाश।
न कोई जन हो कभी निराश।।

अनामर्षी आदर सद्भाव,
रहे दूरीकृत सब अपकर्ष।।
मिले सब विपदाओं से त्राण,
न हो धरणी तल पर संघर्ष।।

ज्ञान धन का हो सदा निवास,
मिटे संघर्ष, बढे उत्कर्ष।
सभी का सम्भव रहे विकास,
नया वैभव दे नूतन हर्ष।।

न हो दलितो पर अत्याचार,
न लटके दंगे की तलवार।
न हो अबलाओं से व्यभिचार,
न पीसे हमको भ्रष्टाचार।।

न फिर से काला हो इतिहास,
न हो फिर लूट-मार की प्यास।
नया भारत अब करे विकास,
नये गौरव के लिए प्रयास।।

हमारा नूतन मुक्ति प्रभात,
धरा पर करे तमस अज्ञात।
न दे मानव मन को आघात,
हमारी करुणा हो विख्यात।

नया यह पर्व नया संदेश,
नये जीवन में देश-प्रदेश।
नये युग का नूतन परिवेश,
हरें हरि मानव जन का क्लेश।।

नयी आशाओं का सन्देश,
लिए आया है नूतन हर्ष।।
शरद नूतन पर मंगल भाव,
वर्ष भर स्वामी नहीं अमर्ष।।

सब बच्चो को वह शिक्षा दो,
जिससे विकास मानवता का।
जिससे हो संस्कृति का विकास,
जिससे विनाश दानवता का।।

है पूज्य शिक्षकों से विनती,
वह राह दिखा दें आप हमें।
जिससे जीवन में उन्नति हो,
वह मन्त्र बता दें आप हमें।।

जिससे स्वावलम्बी जीवन हो,
सहयोगी अपना तन-मन हो,
कुछ ऐसी शिक्षा मिल जाए,
उत्थान राष्ट्र का जन-जन हो।।

जिसके बच्चे खुद भूखे हैं,
उनको रोटी खिला न पाता।
जग को ज्ञान सिखाता फिरता,
घर को शिक्षित बना न पाता।

अपने घर में गहन अँधेरा,
चले वृक्ष-तल दीप जलाने,
जीवन नाव भूख से डूबी,
ब्रहम तेज के फिर क्या मानें?

श्वांस खो चुका है जो अपनी,
वह क्या शव में प्राण भरेगा?
जो अपने को बना न पाया
युग का क्या निर्माण करेगा?

अपना मानस शुद्ध नहीं है,
वाणी भी हो सकी न निर्मल,
संकट में मुस्कान न खिलती,
योग-साधना का क्या प्रतिफल!

'स्वामी' हो चरित्र फौलादी,
वसुधा का कल्याण करेगा।
सुलझी नहीं समस्या अपनी,
वह जग का क्या त्राण करेगा?

माना तुम निर्भय हो लेकिन,
हम भी तो भयभीत नहीं हैं।
सिद्धान्तों के शत्रु बहुत पर,
यह मत कहना मीत नहीं हैं।

मर्यादा विवेक खो दे तो,
सीता का निर्वासन होता।
राजनीति में फँस पुरुषोत्तम,
ऋषि शम्बूक प्राण हर लेता।

निश्छल पावन प्रेम कृष्ण का,
कलुषित मन ने किया कलंकित।
पावन ऋषि के सहज स्नेह से,
भी मैले मन होते शंकित।

किसी राम के जीवन के सब,
कर्म मधुरतम गीत नहीं हैं।
'स्वामी' यह संकेत न समझें,
मधुभावों की जीत नहीं है।

जो जुटा पाया न रोटी,
स्वयं अपने वास्ते।
देश के भूखों को भोजन
दे कभी सकता नहीं।

कर नहीं पाया स्वयम् के
चरित्र का निर्माण जो,
और 'स्वामी' कार्य कोई
कर कभी सकता नहीं।

परवाह नहीं परिणाम
सामने क्या होगा,
जो कुछ है यह भी छिन
जाये, छिन जाने दो।

'स्वामी' अब टुकड़ों पर
पलना स्वीकार नहीं,
लग जाय लहू निर्माणों
में लग जाने दो।

मृत्यु की काली चादर ओढ़,
सो रहे सारे प्राणी आज।
सत्य के अन्वेषक रे बोल!
नहीं आती क्या कुछ भी लाज?

सजा है सारे सुख का साज,
भरा है मीठा जहर अपार।
बनाया है अनुपम प्रासाद,
किन्तु बारूदी है आधार।

दिव्य मानवता के शृंगार!
न होता निशि में तीव्र प्रकाश।
चन्द्रिका में सो ले संसार,
रहे भू हरित, नील आकाश।

बदल कर ऊर्जा में तुम द्रव्य,
करोगे खण्डित यह भूखण्ड।
बता दो 'स्वामी' के अपराध,
मिला यह किन पापों का दण्ड?

छोड़ जाति पांति कुल गोत्र का विभेद सब,
वेद-धर्म वीर सब वैदिक कहाइये।
सत्य श्रेष्ठ धर्म आर्य संस्कृति की ज्योति जला,
मन-कर्म मानव आर्य धीर कहलाइये।।

छोड भटकाव भेद भाव नित्य पन्थ नये,
एक बार वेद ज्ञान ज्योति तो जलाइये।
सारा अधियारा मिट जायेगा, विलम्ब नहीं,
स्वामी कृष्ण-कर्म, वेद धर्म अपनाइये।।

रो चुके हम बहुत, आओ मुस्कुराना सीख लें।
आँसू बहाना छोड़ दें, हम गीत गाना सीख लें।।

रात यह कट जायेगी पल में बदल,
आयेगा वह अरुण परदे से निकल,
यह कंटीला रास्ता कट जायेगा,
हो रहा क्यों इस तरह राही विकल?

खो चुके हम बहुत, आओ आज पाना सीख लें।
आँसू बहाना छोड़ दें, हम गीत गाना सीख लें।।

है अगर सुख क्षणिक तो दुःख कब अमिट,
जायेगा क्रन्दन जगत का सब सिमिट,
है अगर चिर सत्य तो आनन्द बस,
और है क्या है नित्य? सब कुछ जाये मिट।

सो चुके हम बहुत, आओ पग बढ़ाना सीख लें।
आँसू बहाना छोड़ दें, हम गीत गाना सीख लें।।

विश्व में क्रन्दन भरा दिखता उन्हें,
हो न पाया प्रेम का अनुभव जिन्हें,
एक चेतन में सदा जो लीन हैं,
भाव ही सुख का सदा रहता उन्हें।

मिट चुके हम बहुत, अब आओ बनाना सीख लें।
आँसू बहाना छोड़ दें, हम गीत गाना सीख लें।।

अचल सत्संकल्प से हिलता अचल,
अजय नभ को जीत लेना भी सरल,
उत्स सागर के हटे या मिट गये,
एक अनुपम चेतना राजी विमल।

ज्योति से हम ज्योति की आओ मिलाना सीख लें।
आँसू बहाना छोड़ दें, हम गीत गाना सीख लें।।

किसी ने आज तक स्वामी को बुरा कब माना,
एक वो हैं जिन्हें हर बात बुरी लगती है।
हमने तो पाक नजर से जहाँ भर को देखा,
बुरे दिल को ही ये सौगात बुरी लगती है।।

कागज तेरा, कलम तुम्हारी, है मेरी अभिलाषा।
नव प्रभात यह रचे, सफलता की, नूतन परिभाषा।।

जातिवाद का जहर कर रहा नाश हमारा,
विश्व चाहता है फिर वैदिक भाईचारा।
भेदभाव से रहित एक हो धर्म हमारा,
एक ईश है ओम्, वेद ही धर्म हमारा।।

पूज्य है नारी नही लाचार बन सकती,
दुर्गा बनी वह शक्ति का अवतार बन सकती,
प्यार हो तो प्यार तेरे कदम चूमेगा,
अन्याय से नारी कठिन तलवार बन सकती।।

अबला नही हैं आप जो कोई सतायेगा।
ईंधन नहीं है आप जो कोई जलायेगा।
प्रेयसी का प्यार ही सम्बल सुनहरा है,
जो छोड देगा जिन्दगी अपनी गँवायेगा।।

गिडगिडाने से नहीं अधिकार मिलते हैं।
प्रार्थना से कब चमन में फूल खिलते हैं।
प्यार से पत्थर पिघलते हैं सही है ये,
नारी बने दुर्गा तो सब युग सत्य हिलते हैं।।

निशा के सामने सूरज नहीं निकला करता,
द्वेष पाले रहे तो प्यार नहीं खिल सकता।
अपने भीतर वही फिर स्नेह की सरिता लाओ,
बुरे मन से नही कोई तुम्हे फिर मिल सकता।।

काशी मथुरा और अयोध्या,
शिव कैलाश हमारा है।
लेकिन यह मत कहना तुम,
हर मस्जिद् शत्रु तुम्हारा है।।

रहे धर्म स्थान कहीं भी,
किसी नाम से भी स्वामी।
सबको जो आदर देता है,
वही धर्म को प्यारा है।

तुम हिन्दू रहो और मुसलमान तुम रहो,
ईमान से रहो, न बेईमान तुम रहो।
तुम अपने धर्म की करो तो बात ठीक है,
मौका पडे तो देश पे कुर्बान तुम रहो।।

ये मादरे वतन ए हिन्द पाक सरजमीं,
राम या ख्वाजा के यहाँ कौन सी कमीं,
हिन्दू सुमार्ग वेद का, मुस्लिम चले कुरान,
तो इस जहाँ में बन सके जन्नत यही जमीं।।

ख्वाजा के यहाँ आप भी चादर चढाइये,
कान्हां के यहाँ आप भी बन्शी बजाइये।
हो नमन या नमाज, याद उसको ही करो,
हम ईद मिलें, आप दिवाली सजाइये।।

गंगो जमन में आब आप के लिए बहे,
वादी ए कश्मीर आप से यही कहे।
समुन्दर भी आपका है, हिमालय भी आपका,
तू मेरा भाई है तो मुझसे दूर क्यों रहे।।

अब्दुल रहीम हो या कि नानक, कबीर हो,
राम कृष्ण हो या ख्वाजा फकीर हो।
आवामे हिन्द का जो सही रहनुमा बने,
हम सबके लिए सबसे बडा वही पीर हो।।

दवा हो पास मेरे साँस कोई सामने तोड़े,
कभी लाचार और बेदर्द इतना हो नहीं सकता।
कही मजबूरियां हैं, या मनुजता धर्म है अपना,
इसी से मौंन हूँ, पर अहित भी मैं सह नहीं सकता।

किन्हीं मासूम आंखों से गिरे जो अश्क पाकीजा,
उन्होंने मेरे दामन के पुराने दाग धो डाले।
चमन की बेगुनाही की कहानी कह रहे वे खुद,
जिन्होंने जहर में डूबे हुए वे खार बो डालें।

जिन्हें देना सहारा था, वहीं जब बेल को तोड़ें,
बहक जायें हवाओं से और कलियाँ मसल डालें।
करें कुर्बान खुद को जो बचा ले वह चमन को भी,
सहे इल्जाम पर ईमान मत अपना बदल डालें।

किसी मासूम धड़कन को करो मत कैद पिजड़े में,
नहीं तो एक दिन पंछी उसे भीं तोड़ जायेगा।
रहोगे खीजते तुम, हाथ मलते और पछताते,
लुटा कंगाल-सा तुमकों विलखता छोड़ जायेगा।

किसी मासूम को नाकर्दा गुनाहों से जकड़ दो,
नहीं है आज तो कल दोस्त खतावार वह होगा।
किसी की जिन्दगी यदि छीन लोगे बेगुनाही पर,
फरिश्ता भी रहा होगा तो गुनहगार वह होगा।

विकल लाचार पुरनम आँख से केवल बहा पानी,
बहुत काफी था 'स्वामी' जिन्दगी अपनी डुबाने को।
खता ये है कि आंसू पी लिये मुस्कान के बदले,
जो काफी थे तुम्हारी आबरू हस्ती मिटाने को।।

देव परमेश्वर आप महान्,
अरे मेरे घन गहन वितान,
नीर का करते वहन सुदान।।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

सकल जग तृष्णा करते शान्त,
कहीं अति वृष्टि करे आक्रान्त,
कहीं आनन्द, कहीं जन क्लान्त।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

तुम्हारा अदभुत रूप विधान
बदलता है पल-पल नभमध्य।
कभी भयभीत हुआ संसार
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

देखते ऊपर नभ की ओर,
बना वन का नभ पट पर चित्र
दौड़ते हिंसक जीव निःशंक।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

बना देते हो तुम नभ मध्य,
सिंह का भयावना आकार।।
किन्तु उसमें भी क्या सौन्दर्य,
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

गर्जनों से जाता मन कांप,
और छिप जाते माँ की गोद,
दौड़ कर छोटे-छोटे बाल।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

कभी संध्या घनमाला कान्त,
बनाती ऐसा मोहक रूप,
प्रकृति के चतुर चितेरे मेघ।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

बाँध लेते जन मन पल एक,
लौटती जब पश्चिम के क्षितिज,
अस्त होते दिनकर की रश्मि।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

,

करे घनमाला का अभिषेक,
सात रंगों का वह गाण्डीव,
धराशायी करता दुःख भाव।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

पीत, नारंगी, अरुण न नील,
हरित वर्षो का जाल तरंग,
मनस में भरता हर्षोल्लास।
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

अखिल जग को करता संकेत,
दे रहा ज्यों 'स्वामी' संदेश,
उसी सत्ता का मौन प्रतीक
शिवम् सत्यम् सुन्दरम् स्वरूप।।

हो अमित गुण से विभूषित अन्य यदि भाषा विदेशी।
पर नही दे लाभ सकती सम कभी भाषा स्वदेशी।
दिन किसी है मानना यह सत्य होगा हम सभी को।
है महा अभिशाप भारत देश पर यह आंग्ल भाषा।।

लाद दी जो हम पर गयी है जो दिखाकर भय कभी भी।
वह समय कि उतार दे हम, क्या नहीं आाया अभी भी।
क्या रहे परतन्त्र अब भी हम विदेशी अक्षरो के,
दे रही विज्ञान सारा जब हमारी ही स्वभाषा।।

एक प्रतिशत लोग ही जिसको कठिनता से समझते।
नित्य के व्यवहार में वे भी प्रयोग न कभी करते।
मान्य जनता देश की जब है समझ सकती नहीं,
क्यों किये है लाभ की हम लोग निज अविवेक आशा।।

है भरा विज्ञान सारा स्वयम् अपने देश में जब।
ज्ञान की आशा लिए हम देखते क्यों अन्य प्रति तब।
स्वयं कस्तूरी लिए हम खोजते मृग की तरह हैं,
पूर्ण करने को कृतिम निज ज्ञानविज्ञानाभिलाषा।।

पुण्य प्रण कर ले सभी हम आइये इस शुभ समय पर,
होगे स्वभाषा में सदा सब कार्य अब निज मातृ भू पर।
दे सकी केवल निराशा यह अवैज्ञानिक विदेशी,
लाभप्रद स्वामी शरण है सर्वदा सबको स्वभाषा।।

शुभ दिवस आनन्द प्रद है मातृभू को यही आशा।
लें विचार प्रबुद्ध जन हो राष्ट्र की निज राष्ट्र भाषा।

आज मुस्करा रही धरा नयी सुगन्ध ले,
गीत आज कुछ नये-नये पवन सुना रहा।
कुछ नवीन शीत-गति लिये प्रवाह नीर का,
रंग कुछ नवीन आज यह गगन दिखा रहा।।

सामने विराजती प्रकृति नवीन रूप में
कुछ नया-नया निखार पा, नवीन आश ले।।
आ गया प्रभात आज कुछ नया प्रकाश ले।
कुछ नया विकास ले।।

फूल-फूल है खिला लिये हुए नवीनता
गुनगुना रहा भ्रमर-भ्रमर नवीन राग में।
डाल-डाल झूमती नवीन ताल मस्त-सी,
पर्ण-पर्ण भी भरे नवीन जोश बाग में।।

हर दिशा नयी-नयी हरीतिमा लिये हुए।
रंग-रंग से रंगी क्षितिज नवीन आस ले।।
आ गया प्रभात आज कुछ नया प्रकाश ले।
कुछ नया विकास ले।।

आज राह-राह पर नयी-नयी चहल-पहल,
व्यक्ति-व्यक्ति मस्त आज कुछ नवीन भाव में।
कुछ नवीन रंग और कुछ नयी उमंग से,
ढंग कुछ नया नया सहर्ष हाव-भाव में।।

आज जोश है नया-नया स्वतन्त्र देश में,
घूम-घूम, झूम-झूम देखिये सुवास लें।।
आ गया प्रभात आज कुछ नया प्रकाश ले।
कुछ नया विकास ले, कुछ नया विकास ले।।

झूम-झूम बाल आज ले नयी प्रसन्नता,
हाथ-हाथ में ध्वजा लहर रही त्रिगुणमयी।
स्वराष्ट्र-गान आज गुनगुन रहे अधर-अधर,
स्वर तरंग आज गीत-गीत में नयी-नयी।।

पर्व पर्व आज का सुपर्व देखकर 'शरण',
साथ-साथ गा रहे नवीन स्वर-बिलास ले।।
आ गया प्रभात आज कुछ नया प्रकाश ले।
कुछ नया विकास ले।।

मत ह्रदय में ला निराशा,
हो अटल विश्वास मन में,
कर सदा उत्साह अनुभव,
हो शिथेलता नहीं तन में,

हो खडे गिरिराज भारी,
विघ्न बनकर अति भयंकर,
देख करके वीर उनको,
बैठ जाना नहीं थककर।।

यदि सबल अवरोध आकर,
वीरता को दे चुनौती,
वीर मानव धीरता से,
कर उसे स्वीकार हसकर।।

अभय देना उसे उत्तर,
सृष्टि के हम मुकुट मणि हैं,
आज तक आया कभी भी,
भय नहीं चिन्तन मनन में।।

शूल कंटक भी मिलेंगे,
प्रगति पथ पर यदि बढोगे।
रोकने को वे बढेगें,
शिखर पर यदि तुम चढोगे।

शक्ति से भयभीत करने को,
दिखाएगें तुम्हें भय,
चरण चूमेगी सफलता,
सत्य बल से यदि लडोगे।

घोषणा कर धीर मानव,
सत्य पथ के हम पथिक हैं।
किये धारण सत्य सम्बल,
कर्म वाणी और मन में।।

लोग पथ पर खडे होगें,
विश्व के लो विपुल वैभव।
सफलता की साधना को,
कर दिखाते हुए सम्भव।

स्वर्ण के चमचम चमकते,
रूप से अन्धा बनाते।
उस उमडते अमित धन में,
डूबना पर हो असम्भव।।

ज्ञान प्रतिभा और विक्रम,
प्राप्त करने के लिए ही।
कर्म करते हम रहेगें,
रहे जब तक प्राण तन में।।

कुछ मिलेंगे भय दिखाते,
मार्ग की कहते कठिनता।
वे बताएगें असम्भव,
लक्ष्य में मिलना सफलता।

पर नहीं भयभीत होना,
मार्ग की कठिनाइयों से।
सर्वदा पथ-कण्टकों से,
विजय का आभास मिलता।

शूल पथ के फूल बनकर,
स्वयम् ही स्वागत करेगें।
निज प्रयत्नों शक्तियौँ पर,
रहे मन में दृढ विश्वास मन में ।।

कुछ मिलेगें लोग पथ पर,
लक्ष्य का परिहास करते।
पुण्यफलप्रद कार्यक्रम का,
अति कुटिल उपहास करते।

विघ्न में रत खल जनों की,
नहीं चिन्ता कभी करना,
वीर मानव धीर मानव,
ध्यान इसका नहीं धरते।

कर उपेक्षा वीर इनकी,
सर्वदा ही बढो पथ पर।
कर्म पथ के पथिक वीरों,
रमण करना तुम सृजन में।।

विघ्न बाधाएं हटाते,
बढ चलो निज लक्ष्य पथ पर।
मार्ग इस जग को दिखाते,
धर्म की शुभ ज्योति लेकर।

कर्म से जग को करा दो,
ज्योति को परमात्म दर्शन।
चल दिखा दे ज्योति जग को,
सूर्य के सम दीप्त होकर।

ईश को करना न विस्मृत,
कभी भी हे वीर मानव,
गति वही स्वामी शरण रच,
क्रान्ति भर मन अर्थ तन में।।

स्वर्ग लोक में नहीं भगवान कहीं है,
दैव पर आश्रित नियम विघान नहीं है,
भाग्य विधाता स्वयम् का है स्वयम् मानव,
जीवन हमार भाग्य का अनुदान नहीं है।।

स्वर्ग लोक के नहीं भगवान को पूजो,
भाग्य के स्वामी नहीं अनुमान को पूजो,
मनुष्य ही करतें है मदद और करेगें,
पूजना है धरा के इन्सान को पूजो।।

परमेंश को जो देना था, वो हमको दे दिया,
बल बुद्धि साधन सभी से सम्पन्न कर दिया,
प्रगति की दौड में रहेगें श्रेष्ठ लोग वे,
जिसने इनका ठीक से उपयोग कर लिया।।

कभी आशा मत करो, जलधार कुछ करे,
अनुकूल हो अपने हवा की धार कुछ करे,
आशा तथा विश्वास हो अपने ही कर्म पर,
जो कुछ भी करे केवल पतवार ही करें।।

बदलो स्वयम् को फिर परिवार बदल दो,
मानव समाज और यह संसार बदल दो,
रूढियाँ अहित कर मत रहने दो कहीं पर,
बढते चलो, सम्पूर्ण युग की धार बदल दो।।

बढता गया अधर्म अत्याचार हर तरफ,
करता कुछ निर्बल सदा चित्कार हर तरफ,
निर्बल जनों को दुष्ट दबाते ही रहे हैं,
पिसता रहा सदा ही निम्न वर्ग हर तरफ।।

अनीति का विकट यह चक्रव्यूह तोड दो,
अधर्म के घडे को ठोकरों से फोड दो,
दिखा दो देश की यों दिव्य शक्ति विश्व को,
अखण्ड ज्योति से प्रचण्ड ज्योति जोड दो।।

वह ज्योति जला दो यह विश्व जगमगा उठे,
वह क्रान्ति कर दिखा दो विश्व डगमगा उठे,
अन्धकार नष्ट हो सके सभी प्रकार का,
अध्यात्म के प्रकाश में जग जगमगा उठे।।

ॐ

युगबोध

षोडश सुमन

आघात

मुक्ति पर्व को किया कलंकित,
भारत जननी को आघात।।
भारत भू के शत्रु पुराने,
करने लगे घात-प्रतिघात।

रक्त-पात बढ़ गया देश में,
कुटिल शत्रु ने चल दी चाल।
अविवेकी कट्टरपंथी जन,
निकल पड़े थे बनकर काल।।

एक असंयम-ग्रस्त युवा था,
कुंठित शत्रु-घात असमर्थ।
राष्ट्रपिता के प्राण ले लिये,
असमय इतना बड़ा अनर्थ।।

बेच दिया यह चमन देश का
रखवालों ने ही।
यह घर तो बरबाद कर दिया
    घर वालों ने ही।

शत्रु विदेशी था तो हमने
    लड़कर भगा दिया,
राष्ट्र-पिता को छीन लिया,
    मां के लालों ने ही।

शत्रु नहीं सीमा पर
    आँख दिखा सकता,
नाभिकीय बल हमको
    नहीं डिगा सकता,

डर है तो भारत मां को
    उन लालों से,
कौड़ी पर जिनका ईमान
    बिका करता।

हाथ सेंकने को है जिसने
    गांव जला डाला,
हिंसा से बापू का वह
सद्भाव जला डाला,

रघुपति राघव राजा राम,
    जपा करते थे जो,
आज लहू में 'स्वामी' किसने
    ज़हर मिला डाला?

अड़े हैं आज गुलशन के
सभी गुल ही बगावत पर,
यहाँ पत्ती अड़ी है डाल
से अपनी अदावत पर।

बहुत अरमान उम्मीदें
लगा, माली ने सींचा था,
बहारें लुट गयीं सारी,
उलूकों के किसी खत पर।

बागवां बेच अपना दीन
दिल-ईमान बैठे हैं,
फरिश्ते से भले इन्सान
बन शैतान बैठे हैं।

बचाने को वतन की आबरू
खंजर लिये थे जो,
वे कत्ले आम करने को
बने हैवान बैठे हैं।

जिन्होंने खून से अपने
चमन-ए-हिन्द सींचा है,
तुम्हारा ही वतन है यह,
तुम्हारा ही बगीचा है।

लगाया बाग जो तुमने,
उसे क्या खुद उजाड़ोगे?
तुम्हारे शत्रु ने 'स्वामी'
बिछाकर जाल खींचा है।

ये सम्राट हजारों सिया स्वयंम्बर में पर,
जनक नन्दिनी एक राम को देख रही थी,
मथुरा के उस भरे नगर में वो दो आँखें,
एक अकेली राधा को ही खोज रही थी।।

गोपियाँ हजारों थी ब्रज की उन गलियों में,
पर प्रणय कथा राधा की ही गायी जाती,
वीर बहुत हैं हुए हिन्द की इस धरती पर,
एक राम की लीला ही दिखलाई जाती।।

हो गये बहुत राजागण इस भारत भू पर,
पर धर्मराज केवल युद्धिष्ठिर को कहते हैं,
हो वर्षा चाहे डूब चले पूरी धरती, पर,
चातक केवल स्वाति बूँद देखा करते हैं।।

अरबों खरबो हैं नक्षत्र इस नील गगन में,
पर सविता तो एक सूर्य ही कहलाता है,
तीसियों चन्द्रमा इसी सौर्यमण्डल में,
पर एक निशापति भू पर पूजा जाता है।।

वन वृक्षों में जो आज हमारा चन्दन है,
वही छोडकर हम सबको जाने वाला है,
जो सदा पंक में पंकज बनकर यहाँ रहा,
वह आज छोडकर इसको चलने वाला है।।

दूषित वातावरण जिसे यह जीत न पाया,
वह अजीत योद्धा जाने की तैयारी में,
जो रहा चक्रवर्ती होकर दुष्चक्र विलग,
वह राष्ट्रपिता है भारत की रखवारी में।।

दे रहे विदाई उन्हें आन हम द्रवित ह्रदय,
वह नहीं रहा, उसका जीवन दर्शन होगा,
चलती रही यहाँ जीवन की लम्बी यात्रा,
तो इसी रूप में अपना पुनर्मिलन होगा।।

हो सफर राष्ट्र के भावी जीवन का सुखमय,
देकर आशीष हमें अब जाते राष्ट्रपिता,
कर नम्र नमन नतमस्तक स्वामी शरण हुआ
अर्पित करता है भावों का यह गुलदस्ता।।

ॐ

युगबोध

सप्तदश सुमन

उदय

धर्म वीर शिष्यों ने उनके,
राष्ट्र-एकता का सत्कर्म।
जितना सम्भव हुआ किया सब,
माना यही दिव्य युग-धर्म।।

आंग्ल शासकों से भारत का
बड़ा भाग हो पाया मुक्त।
लक्ष्य अभी भी पूर्ण नहीं था,
शेष अभी भू-भाग अमुक्त।।

पुर्तगाल से गोवा छीना,
फ्रांस गया पुदुचेरी छोड़।
बंग देश को मुक्त कराया,
नवदुर्गा ने रिपु को तोड़।।

किन्तु अभी भी पूर्ण नहीं है,
राष्ट्र-मुक्ति का यह संग्राम।
अभी सिन्ध, कश्मीर बचाकर,
ही लेना हमको विश्राम।।

इसके लिए शक्ति-संचय में,
राष्ट्र हो चला अविचल व्यस्त।
सैनिक, वैज्ञानिक, श्रम-योद्धा,
राष्ट्र-भाव में सब अभ्यस्त।।

भूतल में परमाणु शक्ति का,
कर विस्फोट भरा हुंकार।
अन्तरिक्ष में आर्यभट्ट भी,
पहुंचा करने प्रगति प्रचार।।

सिक्किम का कर विलय राष्ट्र में,
राष्ट्र विभाजन का प्रतिकार।
राष्ट्र नायिका के गर्जन से,
शत्रु राष्ट्र में हाहाकार।।

हरित क्रान्ति से हरा-भरा,
हो गया अन्न-पूरित यह देश।
अन्न माँगने वाला भारत,
लगा भेजने अन्न विदेश।।

राष्ट्र-नायिका वीर इन्दिरा,
विश्व-विजेता जैसा तेज।
दुष्ट देश तब व्याकुल होकर,
सोते थे काँटों की सेज।।

भारत के रिपुओं ने मिलकर,
ऐसी चली कुटिलतम चाल।
देवी के विरुद्ध आन्दोलन,
भारत में आया भूचाल।।

दुष्टजनों को कब भाता है,
जन-गण-मन का हो उत्कर्ष।
कुटिल शक्तियों ने रच डाले,
राजनीति के नये कुचक्र।

कल्पित आरोपों की छाया,
कुटिल नीति का कलुष प्रचार।
एक हो गये सभी विरोधी,
छीना सत्ता का अधिकार।

बढ़ी अराजकता भारत में,
हुआ राष्ट्र-गौरव का ह्रास।
शासक ही करने वाले थे,
भारत-गरिमा का परिहास।

भारत की परमाणु शक्ति को,
लगे बताने वे ही व्यर्थ।
दिल्ली को मुगलों का गौरव,
कहते, कितना कहें अनर्थ।।

हे बापू राजघाट से आ कर देखो तो,
तेरे इस भारत की तो तस्वीर निराली है,
वह तोड़-तोड़ कर फूल स्वयं ही मसल रहा,
जो बना हुआ गुलजार चमन का माली है।

वन्धुत्व बढ़ाने में तुमने बलिदान दिया,
भाई-भाई में अभी चली हैं तलवारें,
ये राजघाट पर शपथ उठाकर आये थे
फिर बहा दिया भाई के लहू की धारें।

वह जलियावाला बाग जोर से बोल उठा,
तेरे आगे मेरा दुःख एक नमूना था,
वह नादिरशाही कत्ले आम पुकार उठा
'स्वामी' दुस्साहस यह हमसे भी दूना था।

ॐ

युगबोध

अष्टादश सुमन

विकास

स्वार्थ हेतु जो जुटे विरोधी,
कब तक रह पाते वे एक।
सत्ता स्वार्थ हेतु वे फिर से,
लड़ने लगे, नहीं थे नेक।।

स्वप्न सुनहरे दिखा लोक को,
किया प्रचारित बहुत असत्य।
अल्पकाल को भ्रमित हुआ जन,
विजयी पुनः इन्दिरा सत्य।।

कुटिल पड़ोसी ने रच डाला,
खालिस्तानी नया कुचक्र।
किन्तु इन्दिरा ने उसको भी,
काटा स्नेह सुदर्शन चक्र।।

नव दुर्गा थी वीर इन्दिरा,
राष्ट्र हेतु देकर बलिदान।
अमर हो गयी, करते स्वामी,
अब तक सब उसका गुणगान।।

मोहन गान्धी के अनुयायी,
मनमोहन का वह उत्साह।
निर्धन भारत को धरती की
आर्थिक शक्ति बनाती राह।।

भारत विश्व-शक्ति बन उभरा,
सैनिक, अर्थ-शक्ति, विज्ञान।
अभी बहुत आगे जाना है,
राष्ट्र-पिता का है वरदान।।

जय जयति मोहन कष्ट हारी, स्नेह बल जगदीश हो।
तुम विश्व-नायक, उर विजेता, शान्ति दा अवनीश हो।।
आनन्दघन उर में बसो तुम, नष्ट हो दुर्भावना।
वरदान दो! वरदान दो!! हो, विश्व में सद्भावना।।

'स्वामीशरण' मस्तक नमित कर, याचना यह कर रहा।
सद्भाव का इस विश्व में हो, लहरता सागर-महा।।
विध्वंशकारी समर प्रांगण, की नहीं अब सृष्टि हो।
सद्भेव की, सद्प्रेम की, सद्प्रेम की ही वृष्टि हो!!!

ॐ

युगबोध

एकोनविंश सुमन

विचलन

एक दिन बन्दूक का ट्रेगर बनाने को मिला जब,
उंगलियों के बीच में रखकर उसे मैं देखता हूँ,
एक दम व्याकुल उसी क्षण हो उठा कवि हृदय इतना,
'प्राण कितनों के हरेगा? आद्र होकर सोचता हूँ।

एक दम आवाज निकली हृदय से यों कह गया मैं,
दानवी यन्त्रों कहो, तुम निर्दयी हो गये इतने।
ढालते हो लोह टुकड़ों को विनाशक रूप में यों,
है तुम्हें अनुमान इससे छोड़ देंगे प्राण कितने?

मौत का सामान यों बेदर्द बनकर तुम बनाते,
इस धरा को जीव से खाली करोगे, सोच डाला।
जानते हो, मनुज हो मिट जायेंगे जब इस धरा से,
निकल जायेगा, न संशय, यन्त्रकुल का भी दिवाला।

उस समय कल में अचानक धड़कने उठने लगीं कुछ,
यों लगा, जैसे कि उसमें भावनायें बह रहीं हों।
और सहसा ध्वनि करुण-सी और कातर लगी आने,
ज्यों हृदय की बात को पीड़ित स्वरों में कह रही हों।

और कवि उनके स्वरों को ध्यान देकर लगा सुनने,
कह रही थी-'हे मनुज! नाचीज है रचना तुम्हारी।
सदा तेरे ही इशारों, भावनाओं की गुलामी,
कर रही है जन्म से ही, आज तक यह जाति सारी।

यों हजारों गुनी ताकत है तुम्हारे देह बल से,
पर हिला पाऊँ स्वयम् को, नहीं मिल सकती सफलता।
एक क्षण जीवन अगर तो दूसरे ही क्षण मरण है,
एक अँगुली के इशारे पर हमारा वेग थमता।

हम मिटा सकते जहाँ का दर्प सारा एक पल में,
बस तुम्हारी एक अँगुली का मिले हमको इशारा।
हो मनोरम विश्व सारा, इन्द्र का वैभव लजाये,
दूसरे क्षण विश्व सुन्दर बने मरघट यह तुम्हारा।

हृदय या मस्तिष्क तुमने दिया हमको नहीं बिल्कुल,
इसलिये सम्भव नहीं कुछ सोच पाना या समझना।
कार्य सब करते हुए भी हम कभी कर्त्ता नहीं हैं,
जानते कुछ भी नहीं है, क्या हमें करना न करना?

यदि करो आदेश तो नभ-यान हम ऐसे बना दें,
गगन मण्डल गहन में हम भेज दें निर्विघ्न तुमको।
हम बनायेंगे सुधा, पीकर अमर तुम बन सकोगे,
बुद्धि देंगे तुम्हें, तुम ब्रह्माण्ड में बन देव चमको।

हम तुम्हारे ही इशारे पर करें जीवित मृतक को,
और कोटिक प्राणियों को पलक गिरते मार देंगे।
तुम अगर चाहो, दिशाओं में तुम्हारी कीर्ति फैंले,
हम तुम्हे ब्रह्माण्ड की अनुपम विजय उपकार देंगे।

आज तुम बनवा रहे बन्दूक का जो ट्रिगर हमसे,
सत्य ही उपयोग इसका करोगे वीभत्स ऐसा।
यह हजारों मानवों की मृत्यु का कारण बनेगा,
तो बताओ जन्मदाता! यन्त्र का अपराध कैसा?

विश्व के हित के लिए उपयोग का सामान मांगो,
तो तुम्हारे ही इशारे पर हमें चलना पड़ेगा।
और यदि तुम माँगते हो मौत का सामान हमसे,
तो हमें मजबूर होकर इस तरह ढलना पड़ेगा।

आत्महत्या की अगर तैयारियाँ तुम कर रहे हो,
तो विवश हम इस भयानक कर्म में भी साथ देंगे्।
जानते हैं हम, मनुज की जाति ही मिट जायेगी जब,
एक ही परिणाम, हमको मृत्यु के साये मिलेंगे।

पर करें क्या दीन हैं, दुर्बल विवश हम लोग हैं सब,
विकृत चिन्तन का तुम्हारे भोगना फल पड़ेगा ही।
एक बलि की वेदिका बन जायेगी पूरी धरा जब,
यन्त्र-कुल-परिवार सारा विवश उस पर चढ़ेगा ही।

सोचता हूँ, बुद्धि वाले मानवों की मूर्खता पर,
'ये मिटायगे स्वयम् को ज्ञान-प्रतिभावान् होकर।
विश्व को जो देव बनकर जो स्वर्ग-सा सुन्दर बनाते,
वे स्वयम् मरघट बनायेंगे इसे हैवान होकर।

ॐ

युगबोध

विंश सुमन

अनूभूति

स्नेहलता विद्युत-सी चमकी,
इन्द्र धनुष-सी उदित गगन पर।
छू भी नहीं सका उसको मैं,
पर प्रकाश स्नेहिल जीवन भर।

तन सुख की कल्पना नहीं थी,
पर तुममे कुछ पड़ा दिखायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

मिला स्नेह आमन्त्रण तुमसे,
जीवन में वह पहला सुख का।
हर अभाव का अनुभव मुझको,
नहीं अपरिचित कोई दुख था।

पतझड़ ही देखा था मैंने,
प्रेयसि, तुम बसन्त बन आयी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

स्नेहिल भाव स्वभाव तुम्हारा,
तब वरदान लगा था मुझको।
अब तक मन मन्दिर में रखकर,
पूज रहा हूँ देवी तुमको।

साक्षी है वह विश्व चेतना,
स्नेह देवि ने पूजा पायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

लेकिन यह सौभाग्य क्षणिक था,
कुछ भ्रम तेरा प्यार दे गया।
जग को सिर्फ भला ही समझा,
यह मिथ्या आधार दे गया।

मैं निश्छल था, लोग छली थे,
फिर ठोकर पर ठोकर खायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

मैने समझा, सभी तुम्हारे,
जैसे हमको प्यार करेंगे।
सुख में, दुख में साथ रहेंगे,
साथ जियेंगे साथ मरेंगे।

मैने उनको साथ लिया था,
दूर हो सके तनिक तन्हाई।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

मैं कुबेर सा धनी नहीं था,
नहीं हो सकी मेरी अलका,
इन्तजार था उस शुक्ला को,
किसी बडे लक्ष्मी वाहन का।

सरस्वती का निर्धन साधक,
कठिन अर्चना हिस्से आयी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

उसने मुझे खिलौना समझा,
तन मन के व्यापारी निकले।
केवल तन की क्षुधा मिटाने
वाले वे अभिसारी निकले।

मुझको तेरा प्यार याद था,
उसने नयी राह अपनायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

उनको दौलत से मतलब था,
और बदलने थे हमराही।
मेरी टूटी पर्ण कुटी थी,
उसने तो लंका ही चाही।

उनकी रात जगे महफिल में,
मुझे अकेले नींद न आयी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

जीत गयी सोने की लंका,
और प्यार बदनाम हो गया,
दौलत ने अभिसार खरीदा,
मेरा दिल नीलाम हो गया।

मैंने तो उसको आपनाया,
उसने मेरी नींद उडायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

छल बल अर्थ तन्त्र ताकत से,
उसने सब कानून खरीदे,
मेरे आँसू और खून से
लिखे हुए मजमून खरीदे।।

न्याय लुटा, कानून बिक गया,
उसने मादक नजर घुमायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

यह भी अनुभव मिलना ही था,
प्यार एक धोखा है भ्रम है।
नारी तो विष कन्या भी है,
विष प्रधान है, कन्या कम है।

जीवन दर्शन में यह जोडा,
लेकिन कीमत बहुत चुकायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

मैंने पाया स्नेह अमर है,
बदल भले ही जाये काया।
उस स्वर ने फिर मुझे पुकारा,
और प्यार ने फिर अपनाया।।

मृत्यु बन गयी जब सुख सीमा,
तुमने जीवन ज्योति जलायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

चिर कलंक हो गयी अर्चना,
चिर निद्रा वन्दना सो गयी।
अमर स्नेह के मंजु क्षितिज पर,
मेरी सीमा कहीं खो गयी।।

नहीं भाग्य में लिखी रंजना,
दिव्य भारती कब मिल पायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय,
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

हम शब्दो के सेवा-धर्मी,
वे सत्ता के क्रूर खिलाड़ी।
अपने तो चेहरे पर लेकिन,
उगे पेट में उनके दाढ़ी।

ऐसे में यह होना ही था,
स्नेह-गगन पर बदली छायी।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

जीवन भर वे मेरे रहते,
यह विधि को स्वीकार नहीं था।
लेकिन मैने ही कब माना,
अमर हमारा प्यार नही था।

जिसने जब अपनाया हमको,
उसमे तेरी ही छवि पायी।।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

ले लो राजमहल सुख-साधन,
बस मेरी कविता लौटा दो।
स्वामी ने वैभव कब चाहा,
स्नेह-साधना-पथ दिखला दो।

जग की सब सम्पदा तुम्हारी,
मैंने ईश-भक्ति अपनायी।
हुआ प्यार से पहला परिचय
धन्य हुई मादक तरुणाई।।

ॐ

युगबोध

एकविंश सुमन

अनुबोध

माँ शारदे, माँ शारदे, माँ शारदे, माँ शारदे।
बस एक बार निहार दे, माँ शारदे, माँ शारदे।

तू जननि वीणापणि है, निज हस्त पुस्तक धारिणी,
निज पुत्र को अब तार दे, माँ शारदे माँ शारदे।

अज्ञान क्लेष निवारिणी, भव तारिणी दुःख हारिणी,
नव ज्ञान रव झंकार दे, माँ शारदे माँ शारदे।

श्वेताम्बरी पद्मासना, हे हंस वाहिनि, ज्ञान दे,
अब तो विवेक सँवार दे, माँ शारदे माँ शारदे।

स्वामी तुम्ही काली, तुम्ही दुर्गा, तुम्ही पर्वत सुता,
हर शत्रु को संहार दे, माँ शारदे माँ शारदे।।

नहीं हमें उम्मीद प्रिये अब, कल तक जीने की।
खत्म हो चली आज कमाई खून पसीने की।।

आँच चिता की मेरी तुमको कहीं न झुलसा दे,
हसरत बाकी रही एक कप काफी पीने की।

रोटी जिसके लिए नियामत वह क्या मांगेगा,
आज आखिरी है प्रेयसि, तारीख महीने की।

सिटी बसों का बढा किराया पैदल चलते हम,
कैसे हसरत पालें हम फिर सुख से जीने की।

नीरज की सुगन्ध से पहले कीचड़ का खतरा
आज किसे चिन्ता स्वामी के मरने जीने की।।

तुम्हारे स्नेह के साये में, हम थे बढ चुक काफी।
हमारे प्यार में तुम भी सनम थे बढ चुके काफी।

तुम्हारा प्यार था जो लौटकर हम आ गये वापस,
कि राहे मौत पर वरना कदम थे बढ चुके काफी।।

जहाँ की वेवफाई के कहां तक घाव गिनवाएं,
सुनाने में जो बीते हैं जनम थे बढ चुके काफी।

अभी तक वो जमीं पर हैं और नाजीच भी जिन्दा,
खुदा की ही ये रहमत है, रहम थे बढ चुके थे काफी।।

सभी को देखता है वह, जो हम सबका ही मालिक है,
उसी को याद कर स्वामी, बहम थे बढ चुके काफी।।

उनके लिए करेगें हम किसलिए इशारा,
मेरी गजल में वो तो यूँ काफिया रहे हैं।।

सब ही खलिश रहें वो ही मस्तियाँ रहे हैं।
मेरे लिए वही तो बस आशियाँ रहे हैं।।

हम क्यों उन्हें बताएं ये प्यार का सलीका,
दुनियाँ में इश्क की तो वो माफिया रहे हैं।।

मालिक ए दो जहाँ भी कुछ दूर तो नहीं था,
वो ही खुदा व मेरे बस दरमियाँ रहे हैं ।।

उनके रहम करम को हम किस तरह भुलाएं,
स्वामी रहा अंधेरा, तब वो दिया रहे हैं।।

मंजिले जीस्त फरीदा है प्यार की सीमा।
हमें मिले न मिले उस बहार की सीमा।।

स्नेह है, मंजु है, पूजा है जिन्दगी है वह।
खडी है बीच में मजहब दीवार की सीमा।

उसे तो पा के भी हम पा न सके हैं अब तक।
खुदा पूरी करे ख्वाहिश हजार की सीमा।

नहीं मुमकिन था कि हम खोज लेगें यों तुमको।
हमें दुश्वार क्यों तेरे दुलार की सीमा।

राह अनजान थी शायद वो ठीक ही तो थी।
नजर के सामने है कु-ए-यार की सीमा।

बहुत देखी नियामतें हैं खुदा की हमनें,
आप हैं रहमते परवर दिगार की सीमा।।

तुम्हारे रहमों करम पे है जिन्दगी अब तो।
हमें स्वीकार है ये इन्तजार की सीमा।

इस तरह रहनुमाँ आज कल हो गये।
देश दलदल हुआ वे कमल हो गये।

सीखने हम लगे गैर से इस तरह,
आदमी न हुए हम नकल हो गये।।

छोडकर दीन ईमान जबसे बढे,
जिन्दगी में हमेशा सफल हो गये।

इश्क में जीत पाये तभी दोस्तों,
हम न आशिक हुए दल-बदल हो गये।

दे दिया आसरा था खता हो गयी,
नीड से आज हम बेदखल हो गये।

दीन के नाम पर हम जहर पी रहे,
और वाइज के ऊँचे महल हो गये।।

आज मायूस चेहरा खिला तो सही,
थी खबर ये कि स्वामी कतल हो गये।।

जो मर रहे हैं भूख से उनको बचाइये।
घर दीजिए फिर राम का मन्दिर बनाइये।

शहरे अमन में आप मत दंगा कराइये,
मत राम नाम बेंचिए अब मान जाइये।

फुटपाथ पर जो सो रहे छत भी नसीब,
उन बदनसीब के लिए छप्पर दिलाइये।

श्रीराम के आदर्श पर सीता हुई बेघर,
मासूम बेगुनाह का फिर घर बसाइये।

कब तक पिता के नाम से वंचित रहे लव-कुश,
अपनाइये उनको जरा इज्जत दिलाइये।

जूठन बटोरता हुआ मजबूर बचपना,
कुत्ता भी झपटने को है पत्तल बचाइये।

राम की गाथा अभागा पढ सके स्वयम्,
हो सके स्वामी उसे अक्षर सिखाइये।।

बज्म उनकी है जाम उनका है।
जान उनकी है नाम उनका है।

नूर जलवा जनाब का कहिए,
प्यार का ये इनाम उनका है।

खूब नाजुक नसीब है वो तो,
सिर्फ हमसे सलाम उनका है।।

ईद रोजा नवाज वो मेरी,
आज महफिल में काम उनका है।।

प्यार के मायने नहीं मालूम
इश्क का तामभाम उनका है।।

आप माहिर अरीब शायर हैं,
और स्वामी कलाम उनका है।।

दोस्ती को ए मेरे दोस्त कोई नाम न दो।
प्यार काफी है उसे और कोई काम न दो।

मैने पूजा है तुम्हें प्यार की देवी की तरह,
मेरी ताहीन है, औरों सा यूँ सलाम न दो।।

मैंने चाहा तुम्हे, तुमने भी मुझको चाहा था,
ये न कहना कि फिर से प्यार का पैगाम न दो।।

वेवफा तुम हो नहीं कोई तो मजबूरी है,
पिला दो आँख से, हाथों से अगर जाम न दो।।

तुम हो चाहत मेरी या जीस्त की सीमा स्वामी,
मौत दे दो मगर यूँ प्यार को इल्जाम न दो।।

देखा तुम्हें न रोकते तो भी गुनाह था।
पूँछा जो हाल चाल क्या वो भी गुनाह था।।

क्या है गुनाह और क्या है फर्ज बोलिए,
जो डूबते को आज बचाना गुनाह था।।

जो सर्द रात में किसी की जान बच सके,
हमने जला दिया था आशियाँ गुनाह था।।

दुश्मन की साजिशो से जब घिरे हुए थे वो,
हमने उन्हे बचा लिया इतना गुनाह था।।

आसान है नही तुम्हें पाना यह था पता,
स्वामी लगे थे चाहने ये तो गुनाह था।।

हम भी कोई बहार हैं हमने नहीं कहा।
काबिल तुम्हारे प्यार है हमने नहीं कहा।।

तुमने ही कुछ कहा तो हमें हो गया भरम,
वरना तुम्हारे यार हैं हमने नही कहा।।

बाहों में आपने हमें अपने सुला लिया,
ये तुमको खुशगवार है हमने नहीं कहा।।

जालिम उमर का जिक्र औ कहना मेरे स्वामी,
दिल में कसक अपार है हमनें नहीं कहा।।

अँधेरा है घना कुछ रोशनी लायी जाए।
चलो इस देश में अब आग लगायी जाए।

जरूरी है खुली ताजी हवा जमाने में,
तोडिये छत, सभी दीवार गिरायी जाए।।

गुजर गया है इस दर से मकाँ छूकर दुश्मन,
जमीं यह खोदकर फिर पाक बनायी जाए।।

खूब कीचड में है पानी में है पर खुशबू है,
कली वह प्यार से नीरज सी बनायी जाए।।

सुबह नहीं, शाम नहीं, रात नहीं है अपनी,
खबर नवीस हैं हम खबर नहीं है अपनी।

मौसमे गम हो खुशी वस्ल या तन्हाई हो,
एक सा हाल है तू भी तो नहीं है अपनी।।

तुम्हारी जुल्फ की, होठों की बात कब सोचें,
नाम ले लूँ दो घडी भी तो नहीं है अपनी।।

आपसे प्यार के इजहार की जुर्रत स्वामी,
फक्र ए खिदमत भी तो किस्मत में नहीं है अपनी।।

आप हर दिल अजीज हर किसी की चाहत है,
हर एक होता तो चाहत भी नहीं है अपनी।।

तेरे बिना अकेले कुछ भी नहीं है मुमकिन,
यदि हम कदम बनो तुम सब कुछ यहीं है मुमकिन।।

तेरे लिए जिये हम कहना फजूल होगा।
तेरी मगर जुदाई सहना नहीं है मुमकिन।।

अधिकार मैं जताऊँ इतनी नहीं है हस्ती,
मुझ पर है हक तुम्हारा कहना यही है मुमकिन।।

वे और होगे आशिक सूरत पे जो मरे हैं,
तुम मेरी हमसफर हो चाहत रही है मुमकिन।।

रुक जाएगी कयामत यदि साथ मेरे तुम हो,
दुनियाँ रहेगी कायम माना यही है मुमकिन।।

पाने की कोई कोशिश तुमको जुदा न कर दे,
तुम से मैं कह सकूँ कुछ स्वामी नहीं है मुमकिन।।

मत मांगिए तन्हाई खोली किताब हूँ मै।
है दोस्त ये हकीकत तेरा ही ख्वाब हूँ मैं।।

कितना खराब हूँ मैं, सोचो जनाव हूँ मैं,
क्यों लाजवाब हो तुम, क्यों लाजवाब हूँ मैं।।

वो मिल गये अकेले तो भी यही कहा था,
आ बज्म को नवाजें यूँ बेहिजाब हूँ मैं।।

नाचीज एक सितारा महफिल हमारी हस्ती,
तन्हा सफर कटे क्यों कब आफताब हूँ मैं।।

दिल में छुपा लूँ तुमको आखों में बन्द कर लूँ,
क्यों सोचती हो हमको कोई नकाब हूँ में।।

तुम बेनजीर स्वामी, हैं गजलगो फरीदा,
होंगे सवाल कितने, सबका जवाब हूँ मैं।।

आज से हम तुम्हारे हुए।
और तुम भी हमारे हुए।।

चाँद सी तुम फलक पे रहो,
साथ में हम सितारे हुए।।

ए सनम, तुम मेरी जिन्दगी,
हम तुम्हारे सहारे हुए।।

सांस बोलेगी हम तो नहीं,
वक्त के आज मारे हुए।।

भूख मेरी मोहब्बत हुई,
गर्दिशों में सितारे हुए।।

चाँद, सूरज भी बस रोटियाँ,
इस कदर हम बेचारे हुए।।

यह चमन क्यों सलामत रहे,
रहनुमा ही उजारे हुए।

प्यार को अब कहाँ खोजिए,
आम नफरत नजारे हुए।।

तुम फरीदा हो स्वामी नहीं,
बुलबुले हम किनारे हुए।।

टूट गये यदि प्रेम-बन्ध तो,
फिर अनुबन्ध न रह पायेंगे,
मानस के टूटे तारों से,
फिर मधुछन्द न बह पायेगे,

कुछ अपनी ही भूलों से जो,
रोधीगढ निर्माण हो गए,
इन कागज के फूलों से तो,
कभी नहीं वे दह पायेंगे,

जिस मधुवन को स्वयम् उजाडा
है दुर्भाओं के पाले से,
अब उसके मुरझाये किसताय,
प्रणय कथा क्या कह पायेंगे।।

उष्ण श्वांस के अनिल गगन में,
घन मण्डल को रिक्त कर गये,
अब क्यों उनकी सलिल वृष्टि से,
जीवित तरुवर रह पायेगें।।

उन स्नेहिल सम्बन्धो की जब,
गला घोंट कर हत्या दी,
अनुबन्धों की बैशाखी पर,
चर सम्बन्ध न रह पायेगें।।

बंध अनुबन्ध बन्ध से स्वामी,
शरण सुखद सम्बन्ध चल सकें,
तो धरणी के मुक्त प्रेम के,
फिर क्यों निर्झर रह पायेगें।।

आज डकैतों के संरक्षण में हम भी तो जीते हैं।
आदर्शों की हत्या का हर वक्त हलाहल पीते हैं।
हे ईश्वर स्वामी के जीवन में कैसी लाचारी है,
धर्म बचाने में अधर्म की छाया में दिन बीते हैं।।

अब असत्य को धर्म बताना भी मेरी मजबूरी है।
दुराचार को उचित बताना मेरे लिए जरूरी है।
सीने पर कटार है, रक्षक को अच्छा कहना होगा,
सत्य बोल दूँ तो मिट जाए अभी मौत से दूरी है।।

मानता हूँ मिला तुमसे बहुत कुछ और कुछ खोया,
मगर यह दर्द है दिल में कि इतने वेवफा निकले,
मुझे उम्मीद थी कुछ रंग तो तुम पर चढा होगा,
मगर इतने दिनों के बाद भी बिल्कुल सफा निकले।।

अच्छा किया तुमने हृदय को तोडकर,
कुछ कर सकें हम शरन तुमको छोडकर,
वेवफाई के लिए दिल से बधाई
हम थे बंधे सम्बन्ध तुमसे जोडकर।।

जहर ए जिन्दगी हमसे पिया नहीं जाता,
जाम कहते हो घूँट भी लिया नहीं जाता,
दर्द शीरी है मुबारक हो शरन तुमको ही
सहन तूफाँ ए दर्द अब किया नही जाता।।

हर नफरत का जन्म मोहब्बत से हुआ करता है,
गुलो के बीच में ही खार चुभा करता है
मिली है जिसको मोहब्बत की जिन्दगी ऐ शरन,
उसी के दिल में इसका दर्द रहा करता है।।

अधरों की मुस्काने देखीं,
इन नयनो का नीर न देखा।
तुमने देखा है अल्हडपन,
मनमानस का पीर न देखा।।

तुमने अभी प्रणय के सुमधुर,
केवल दृश्य देख पायें हैं।
पर विकराल धनुष से निकला,
तीक्ष्ण विषैला तीर न देखा।।

तुमने अभी चमकते वस्त्रों का
केवल आनन्द लिया है।
पर कोमल अंगो से लिपटा,
तार तार तन-चीर न देखा।।

मेरे द्वार धरा शव उसने, उसको भी स्वीकार किया।
हर आरोप सहा है लेकिन, मैने केवल प्यार किया।।

रोक पाऊँ तुम्हें इतनी कहाँ मेरी हस्ती,
चाहते हो अगर जिन्दा हमें तो मत जाओ।।

भूल अपनी रही तुमसे अगर उम्मीद किया,
भला भौरों से और गिरगिरों से क्या मिलता।

हो सकता है कि रेगिस्ताँ में भी गुल खिल जाए,
नहीं उम्मीद है तुमसे मोहब्बत की मगर।।

दर्द इतना न दो बर्दाश्त के बाहर जो हो,
नहीं गर सह सके तो जिन्दगी यह छूटेगी।।

लगायी आग थी जिससे मरे जलकर स्वामी,
मगर हम रोशनी पाकर हुए रोशन उससे।।

इस कदर रोशन रहे यह प्यार की अपने समअ।
बुझ न पाये जो उठे तूफान कितने राह में।।

जब अँधेरा ही दिया तो फिर अँधेरा ही रहे,
रोशनी की किरण आये क्यों भटकती सी यहाँ।।

लोग कहते हैं कि गम में याद आता है खुदा,
पर बुलाएं हम किसे हम जिसके खुदा केवल तुम्हीं।।

कर सके खिदमत तुम्हारी कब कहा इस योग्य हम,
पर न आये तुम अगर सूनी रहेगीं महफिलें।।

नहीं गर चाहते हो चैन से हम जी पायें,
चले आओ कि जिससे शान्ति से मर ही जायें।।

तुम्हें ही देखने को हैं अभी जिन्दा स्वामी,
नहीं तो कर चुकी पूरा सफर यह जिन्दगी।।

एक हो मर्ज तो उसका इलाज भी कर लें,
दर्द से मिलकर बनी है यह जिन्दगी अपनी।।

इतनी ज्यादा प्यास है क्यों आज कल शरन,
अश्क से आँखे कभी खाली नहीं रहती।।

किसी को गोद में रखो तुम्हारी मर्जी है,
सिर्फ कदमों में थोडी सी जगह चाही मैनें।।

शरन इस दोस्ती से थी तुम्हारी दुश्मनी अच्छी,
कम से कम खिला चेहरा था खुलकर बोलते तो थे।।

सारे समुन्दर और दरियों में है जो पानी,
इन्सान ने रो रो के बाहाया आँख से।।

गम नहीं हमकों कि जलती क्यों नहीं समअ,
दर्द है इसका शरन को जलकर बुझ जाती है क्यों।।

बहुत से लोग मिलते हैं गुजर जाते हैं राहों से,
पर जिनकी याद रह जाती वो इन्सां और होते हैं।।

अब किसलिए यह बोझ हम ढोएं शरन,
जब जिन्दगी से काम कुछ होना नहीं।।

गम नहीं राहों में खार ही बिछे रहे
आजाद तो होते कदम चलने के वास्ते।।

तूफानों झंझावात का कुछ डर नहीं हमें
होते नहीं लाचार गर जाने से जंग में।।

पानी समुन्दरों का है खारा इसीलिए,
इन्सान के आँखो का है आँसू भरा हुआ।।

दिया है दर्द जो तुमने अजीज ऐ मेरे जिगर।
शरन ने उसको मोहब्बत का ही तोहफा समझा।।

शरन को कर्दा गुनाहों की सजा क्या दोगे
उसने नाकर्दा गुनाहों की सजा चाही है।।

मोहब्बत करने हम निकले, मेरा दम हर कदम निकले।
लगा यूँ अपने कन्धें पर, जनाजा रखकर हम निकले।।

अंगूर की बेटी से न रिश्ता बढा शरन,
छूटती नहीं हैं ये जालिम लगी हुई।।

शरन क्या होने को कुछ अब भी कसर बाकी है,
जिन्दगी टूट गयी मौत मगर बाकी है।।

शरन ये इम्तहान भी निकला कयामती,

लगता है उम्र कैद से छूटे है आज ही।।

सडको के सन्नाटे की क्या हस्ती है,
यह सब अपने भीतर का सूनापन है।।

प्यार ने हमको बनाया काम का,
यह निकम्मा शरन भी क्या खूब है।।

उठा के देख ले तू जरा इधर भी आखें,
यहाँ कब से खडे नजरे मेहर उम्मीद में।।

ॐ

श्रद्धा सुमन

(युगबोध के प्रथम संस्करण का विमोचन वरिष्ठ कवि श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय विनोद जी ने कियी था। वे हमारी साहित्यिक संस्था नवयुग के अध्यक्ष भी थे। उस समय वे वे कानपुर में उपश्रमायुक्त, उत्तर प्रदेश के पद पर कार्यरत थे। कुछ समय पश्चात् उनका यहाँ से स्थानान्तरण हुआ तो नवयुग की ओर से उनको भावभीनी विदाई दी गयी थी तथा उनको इन पंक्तियों में हमने अपने मनोभाव अर्पित किये थे।)

जिनके गरिमामय निर्देशन
में नवयुग का नव विस्तार,
सद्‌गुण ज्ञानपुञ्ज मानवता
की प्रतिमा तुम विगत विकार।।

दो अधरों पर क्रीडा करती
सदा स्नेहमय मधु मुस्कान,
प्रेम पिता सा मिलता हमको,
सरल स्नेह की मूर्ति महान।।

जिसकी मृदुल मनोहर छाया,
पूर्ण कर रही थी मम कार्य।
प्रगति पन्थ पर पग बढ जाए,
दे आशीष काव्य आचार्य।।

यदि विनोद ही दूर रहे तो
जीवन रहे कहाँ अवशेष,
अब विनोद के विदा क्षणों में,
अर्पण को आँसू है शेष।।

आज विदाई की बेला में,
मानस स्नेह स्वच्छ सम दर्पण,
आद्र ह्रदय से श्रीचरणों में,
स्नेहिल श्रद्धा सुमन समर्पण।।

❖❖ ❖ ❖❖